वनौषधि विशेषांक (षष्ठ भाग) की विषयानुक्रमणिका

यूकेलिप्टस	1	रुद्राक्ष	57
रक्त रोहिडा नं0 1	4	रुद्राक्ष नं0 2	59
रोहिडा नं0 2	7	रुसा	59
रक्त रोहिडा नं0 3	8	रेंड	60
रक्त रोहिडा नं0 4	8	रेवन्द चीनी (भारतीय रहुबार्ब)	66
रतनजोग	9	रोजमरी	71
रतनजोत	9	रोसाघास	72
रतन जोत नं0 2	10	रोहण	73
रतन जोत नं0 3	10	रंगन (बन्धुका)	75
रतन पुरुष	10	रंगून की बेल	76
रतालू	11	रंजन (बड़ी गुमची)	77
रनफनास	11	रंघेवडा	78
राई	11	लघु श्लेष्मान्तक (गोंदी)	78
राई काली	17	लजालू	79
राजगिरा	19	लजालू छोटी (झोर)	83
राजबला	19	लटकन	84
राजमाह (चांवला)	19	लटमहुरिया	85
राडी	20	लतमी	85
रान चिमनी	21	लतामेंहदी	86
रानीफूल	21	लफा	86
रोमचना	21	लमतानी	86
रामतिल	22	ल्यूबिस फरम्यून	86
रामदतोन	23	लवंग लता	87
रामफल	23	लहसुन	87
रामबांस	24	लहसुन एक कली	102
रामलो	25	लक्ष्मण फल (मामफल)	103
रामशर (हापरमाली)	25	लक्ष्मणा	103
रामेठा	26	लांगुली लता	106
राय जामन	28	लामजज्जक	107
रायतुंग	29	लास	108
रायधनी	30	लिबिडिबी	108
रालवृक्ष	30	लिबाडा	109
रास्ना (वायसुरी)	34	लिसोडा छोटा	109
रीठा	43	लिसोडा बड़ा	110
रुदन्तीघास	48	लीची	113
रुदन्तीफल (लुतिकाय)	49	लीनपिन	114
रुद्रवन्ती	55	लील कराती	114

लील जहरी	114	शकरकन्द	144
लुकाट	115	शकर पिटन	145
लोध्र	115	शकाकुल	145
लोध पठानी	118	शकाकुल मिश्री	146
लोबान	119	शज्रतलु	146
लोबान (कुन्दुर)	121	शतावरी बडी	147
लोलोरी	122	शतावर	148
लौंग	122	शन्नवल्ली	158
लाल जडी	129	शफरी	158
वचगन्धा	130	शदाबूटी	158
वटदला	130	शरपुंखा	158
वट्टाली	131	श्वेत शरपुंखा	162
वनगोभी असली	131	शलगम	162
वन मल्लिका	132	श्वेत हुली	163
वनप्सिका	132	शहतूत	163
वन शेम्पगा	132	शांई कांटा	165
वनसांगली	133	शांबर बेल	165
व्याकीटि	133	शाल	166
वरमूला	133	शालपर्णी	166
वरसिंगी	134	शालपर्णी नं0 2	168
वरुण	134	शिकाकाई	169
वल्लभोम	136	शिंगटिक	170
वल्लिपान	137	शियाह कान्ता	171
वल्ली काजिरम	137	शिलांगरी (विटेक्स पिंडकुलारिस)	171
वागटी	137	शिलारस	172
वामी	137	शिवनिंब	174
वासन्ती	138	शिवलिक	174
वांजि	138	शिवलिंगी	175
विखारी	138	शीरखिश्त	177
विष	139	शीशम	178
विष कण्डारा	140	शीशम विलायती	180
विष्णुक्रान्ता (नीले फूल की शंखाहूली)	141	शुकाई	180
वीरी वादरी	142	शूकरान	181
वृश्चिकाली	142	शूरीघास (लापरियाघास)	181
वेखरियो	143	शेरसा (शिराक्ष)	182
वेट्टिट	144	शैलम	182
वेनकुरूंजी	144	शोथ की बूटी	182
वेल्लाइन बेल	144	शंकेश्वर	184
वेल्लाकुरिजी	144	शंखपुष्पी	184

शंखाहुली	188
सकबीनज	189
सकमूनिया	189
सकीना (अर्घवान)	191
सकेना	191
सगतरा	191
सगेरी	192
सत्यानाशी	193
सदमण्डी (हिरनखुरी)	200
सदापुष्पी	200
सदाफूल	202
सदासुहागन (बारहमासी) संगखापुली	203
सन्दरवार	203
सन	204
सनपर्णी	205
सनाय	205
सप्तरंगी (सप्तचक्रा)	209
सर्पगन्धा	211
सफेद डाँमर (चंद्रस)	219
सफेद बबूल	220
सफेद सेमर	221
सफेद सरसों	222
समरा कोकडी	222
समुद्रफल	223
समुद्रफल नं0 2	224
समुद्र शोष	225
स्याह चोब	225
सरकण्डा	225
सरख्स	225
सरपट	226
सरपानो चारो	226
सरमल	227
सरमूल	227
सरो	227
सरसों	228
सरहटी	230
सलवियास फेकुस	231
सहसा	231
सहदेवी	231
सहदेवी बड़ी	233
संहजना कडवा	233
सहंजना मीठा	235
सागवान	241
सागूदाना	242
सातर	243
साबूनी	244
विदेशी साबूनी	244
सामाघास	245
सारिवा जंगली	245
सारिवा विलायती	246
सालपन	246
सालपन बड़ा	246
सालम मिश्री	247
सालम लाहौरी	251
सालम मद्रासी	252
साल शाँई बबूल	252
सावनी	253
सास फरास	253
सिन्कोना	254
सिंगडियो	259
सिंघाड़ा	260
सिताब	261
सिपाम	264
सिमेना विरुंजी	264
सिरन (पीला सफेद सिरस)	264
सिरयारी (सफेद मुर्गा)	264
सिरु (सरघास)	265
सिराल	265
सिरस काला	266
सिरस पीला (सफेद सुगन्धित)	269
सिरस लाल	269
सिरस भूरा	270
सिरस सफेद (गुराड)	270
सीताफल	270

सीसालियूस	271
सुनिषणकः शाक	272
सुखदर्शन	273
सुपारी	273
सुरंजान कडवी	278
सुरंजान मीठी	280
सुरिंद (गेवा)	282
सुलतान चम्पा	283
सुर्य्य भिंडा	283
सूरज कांति	284
सूरज कौंल	284
सूरजमुखी	285
सेन्टोनीन	286
सेम	288
सेमचमरिया	288
सुअरासेम	288
सेमर	289
सेब	292
सौंठ	297
सोनापाती	302
सोनवल्ली	303
सोनासली	303
सोमकल्प लता	304
सोमवल्खम	306
सोया	307
सोयाबीन	309
सोसन	312
सौंफ	313
संगकुप्पी	319
संकासुरा	321
हडजोडी	321
हनुमान फल	322
हमाम	322
हरकुच कांटा	323
हरड़	324
हरी चाय	339
हरफा रेवडी	340
हरमल	341
हरेल चारा	343
हरवल (खाजगोली)	343
हलकुसा	344
हल्दी	344
हलदू	351
हलियून	352
हब्–एल–घर	353
हस्ति दंती	354
हस्ति शुण्डी	355
हाऊबेर	356
हाथीचूक	358
हाथी चोक	359
हार सिंगार	359
हालिम (हालों)	361
हाशा	363
हिंगोट	364
हिरनपदी	365
हिरु सियाह	366
हिंसालू	367
हिलमोचिका	367
हींग	368
हींगड़ा	377
हीरा दोखी नं0 1 (सकोतरीगोंद)	377
हीरा दोखी नं0 2	378
हुरा	379
हुरहुर श्वेत	380
हेमकन्द	382
हेमवती बचा	383
हेम सागर	384
हेरम्ब	384
होलोंग	384
हंसराज नं0 1	385
हंसराज नं0 2	387
हंसराज नं0 3	388
हंसपदी विशेष (गजकेशर)	388
क्षीर काकोली	390
क्षुद मक्षिका	391

यूकेलिप्टस (Eucalyptus Globulus)

यह जम्बादि कुल (Myrtacae) का एक बड़ा ऊँचा वृक्ष होता है। तना साफ सफेदी लिये हुये, जिसका काण्ड स्कन्ध काफी ऊँचा तथा सरल होता है। काण्ड त्वक् लम्बे–लम्बे तथा कागज सदृश पतले पर्तों में उतरती है, जिसके बाद वृक्ष काण्ड सर्वत्र नीलाभ श्वेत, चमकीला एवं चिकना मालूम होता हैं।

पत्र–करवीर के समान लम्बे, पीले, सफेदी मायल हरे, चमकीले और सुगन्धदार 20–25 से0मी0 या 8 से 10 इंच की लम्बी रूपरेखा में हंसिया सदृश, सवृन्त होते हैं। शाखाओं एवं छोटे वृक्षों के पत्र अपेक्षाकृत छोटी रूप रेखा में, कुछ हृदयाकार तथा अवृन्त होते हैं। पत्रों में तेलबिन्दु पाये जाते हैं, जिससे इनको मसलने पर यूकेलिप्टस के तेल की भाँति उग्र सुगन्धि आती है। व्यावसायिक एवं औषधीय यूकेलिप्टस आयल (Eucalyptus oil) इन्हीं पत्रों से प्राप्त होता (किया जाता) है।

पुष्प–बड़े तथा पत्र कोणों में 1 से 3 की संख्या में निकलते हैं, जो प्रायः अवृन्त या छोटे वृन्त युक्त होते हैं।

फल–1.5 से 2.5 से0मी0 या ½ से 1 इंच व्यास के कोणाकार होते हैं, जिनका स्फुटन ढक्कन के रूप में होता है। विशेष जानकारी के वास्ते चित्र अवलोकन कीजिये।

विशेष–यूकेलिप्टस की लगभग 300 जातियाँ हैं। इसमें से अधिकतर का काष्ठ अथवा इमारती लकड़ी (टिम्बर) के लिये प्रसिद्ध है। इसमें से केवल 25 जातियों से ही यूकेलिप्टस तैल मिलता है। इसमें की मुख्य–मुख्य जातियाँ निम्न हैं–

1. Eucalyptus globulus
2. Eucalyptus lumosa
3. Eucalyptus sideroxylon
4. Eucalyptus leucoxylon
5. Eucalyptus elaeophora

इस वृक्ष की जन्मभूमि आस्ट्रेलिया है और आज भी वहाँ की वनस्पतियों में 75% संख्या इस वृक्ष की हैं। यूकेलिप्टस तैल ताजा पत्तों से और वृक्ष के सिरे पर जो शाखायें आयी हुई होती हैं, उनमें से निकाला जाता है। तैल का बड़ा भाग साबुनों को सुगन्धित करने में इस तरह कितने धातुओं से शुद्ध (Mineral sulphides) प्राप्त करने के लिये काम में लाया जाता है। दवाइयों में भी तैल का खूब प्रयोग होता है। नीलगिरी में अपढ़ लोग पान में से तैल सादे तरीके से खींच लेते हैं और उसका विक्रय कर देते हैं।

उत्पत्ति स्थान :

यूकेलिप्टस आस्ट्रेलिया का आदिवासी वृक्ष है। आज यह वृक्ष भारत में सर्वत्र होता है। विशेषकर के दक्षिण भारत में नीलगिरी, अन्नमलाई एवं पालनी की पहाड़ियों में 5000 से 8300 फीट की ऊँचाई पर बहुतायत से मिलते हैं। शिमला में 4000 से 7000 फीट की ऊँचाई पर और शिलांग आसाम में इसके अतिरिक्त उद्यानों एवं सड़कों के किनारे इसके वृक्ष सौन्दर्यार्थ लगाये हुए मिलते हैं। लखनऊ के राष्ट्रीय वानस्पतिक उद्यान में इसके कई वृक्ष लगाए हुए मिलते हैं।

यूकेलिप्टस
(Eucalyptus Globulus La Bill)

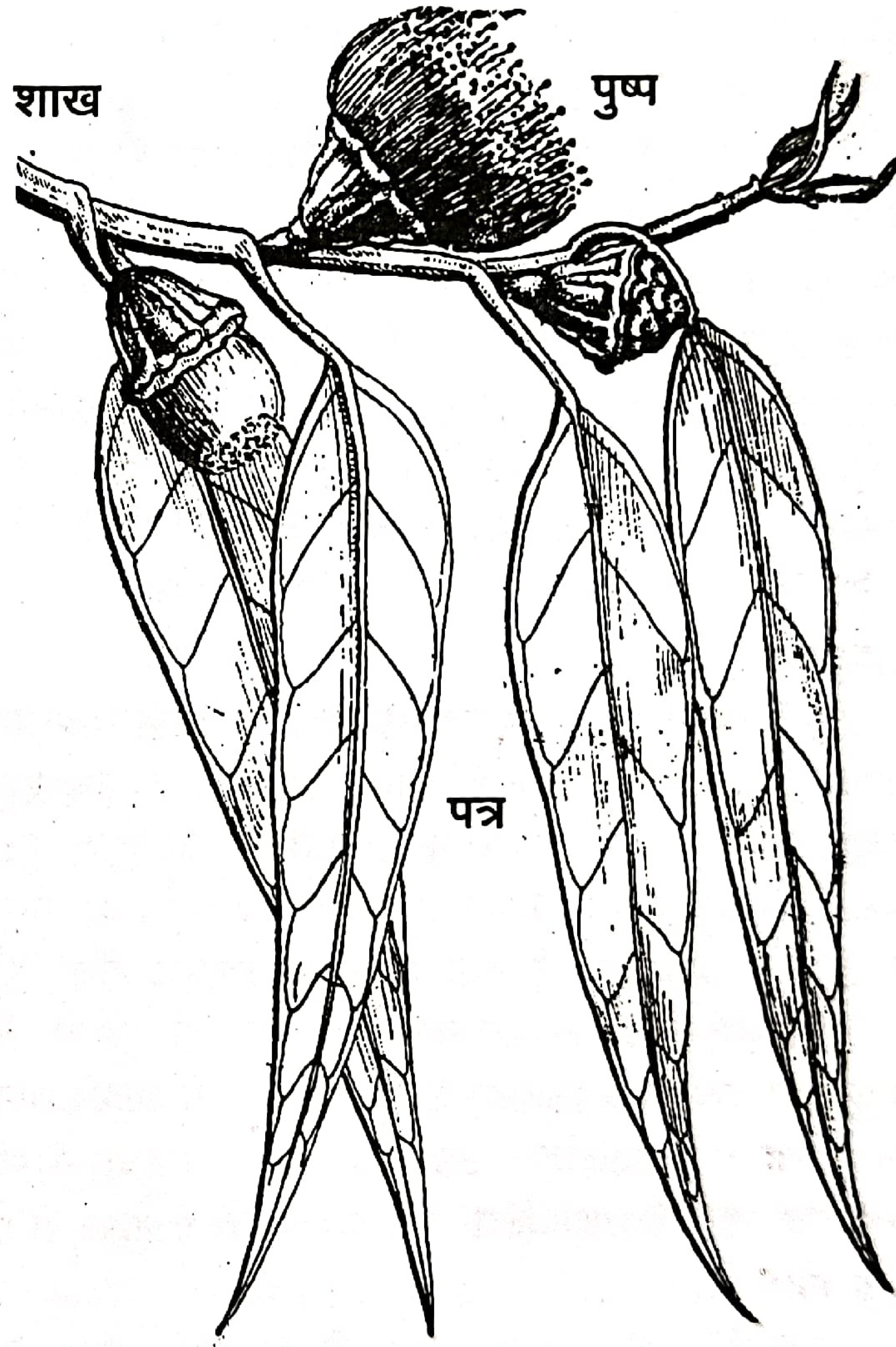

नाम :

सं0–एकलिप्तो, मलयजो, मतंगों, दूरदर्शनः, अभ्रंलिहो, सूक्ष्मपर्णी, गन्धी, गिरिज बान्धवः, दुर्वाष्य हरणः, श्रीदः, सर्व्वतो भद्र। (आयुर्वेद विज्ञानम्) हि0–एक लिप्र, यूकेलिप्टस। गु0–नीलगिरी तैल। ता0–कर्पूरा मरम्। मलयाली–कर्पुरा मरम्। ले0–(Eucalyptus globulus, Ladill) यूकेलिप्टस ग्लोब्युलस।

रासायनिक संगठन :

यूकेलिप्टस तैल में मुख्यतः सिनिओल या यूकेलिप्टोल

लगभग 62%, पाइनीन्स 24%, सेस्क्विटपीन अल्कोहल्स 5% तथा इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा में अन्य एल्डिहाइड्स एवं अल्कोहल्स पाये जाते हैं।

वर्णन–रासायनिक दृष्टि से यह एनहाइड्राइड आफ मेथान 1:8 होता है, यह यूकेलिप्टस तैल का प्रधान उपादान होता है। यूकेलिप्टस एक रंगहीन द्रव होता है; जिसमें एक विशिष्ट प्रकार का द्रव्य पाया जाता हैं यथा किंचित कर्पूर सदृश गंध भी आती है। स्वाद में तिक्त एवं शैत्यजनक होता है।

विलेयता–यह दो भाग अल्कोहल (70%) में विलेय होता है।

प्रयोज्यांग–तैल और पत्र।

चिकित्सा में मुख्यतया इसके तैल (यूकेलिप्टस का तैल) का प्रयोग किया जाता है। वैसे पत्र का कहीं–कहीं औषधार्थ उपयोग होता है।

मात्रा–पत्र चूर्ण 4 से 10 रत्ती। तैल 1 से 3 बूंद।

यूकेलिप्टस का तैल :

यूकेलिप्टस नामक वृक्ष की विभिन्न प्रजातियों के ताजे पत्रों से प्राप्त किया जाता है। पत्रों का परिस्रवण करने से तैल निकलता है। तैल प्राप्त करने के लिये मुख्यतया यूकेलिप्टस ग्लोब्युल्स के पत्रों का व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त (निकले) उत्पन्न तैल को यूकेलिप्टस का तैल कहते हैं।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा :

यूकेलिप्टस का तैल–एक उड़नशील, रंगहीन अथवा पीताभवर्ण के द्रव के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसमें एक विशिष्ट प्रकार की उग्र सुगन्ध पायी जाती है, जो कुछ–कुछ कर्पूर से मिलती जुलती है। स्वाद में यही तीक्ष्ण तथा कर्पूर सम होता है और बाद में मुख शैत्य का अनुभव होता है।

विलेयता–जल में अत्यल्प मात्रा में घुलनशील है, किन्तु तेलों, वसा एवं डिहाइड्रेटैड अल्कोहल में अच्छी तरह घुल जाता है। अल्कोहल 80% की बराबर मात्रा में भी घुलनशील होता है। आपेक्षिक घनत्व 150 पर 0.9065 से 0. 9165 होता है।

परावर्तन तालिका–1.4580 से 1.4700 होता है। आप्टिकल रोटेशन .5 से 1.0 तक होता है।

संग्रह एवं संरक्षण :

यूकेलिप्टस तैल को अच्छी तरह मुख बन्द पात्रों (स्टापर्ड बोतलों) या शीशियों में, ठण्डे एवं अंधेरे कमरे में रखना चाहिये।

वीर्य कालावधि–तैल का दीर्घकाल तक औषधार्थ प्रयोग किया जा सकता है।

गुणधर्म और प्रयोग :

रस–कटु, तिक्त, कषाय। गुण–लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण। वीर्य–उष्ण। विपाक–कटु। दोषकर्म–कफवात शामक। कर्म–(अ)बाह्य–जीवाणु वृद्धि रोधक (जन्तुघ्न), जीवाणु नाशक।

(ब) आभ्यन्तर–उत्तेजक, वेदना स्थापन, कफघ्न, ज्वरघ्न, श्लेष्मक्षतिहर, मूत्र जनन, स्वेद जनन, प्लीहा संकोचक।

''हरि द्रुमोज्वर हरः कीट मर्दश्च तिक्तकः कफ पित्तहरस्तिक्तः सुगन्धः पूतिनाशनः। बलप्रदो रुचिकरो, क्षताक्षेप विनाशनः।। जीर्ण दुर्वाष्प विषम ज्वर हृत कास शूलनुत्। तैलं दुर्गन्ध हरणं पत्रं सर्वरुजापहम्। संपर्कादस्य नश्यंति सर्वे रोगाः न संशयः।।''

नीलगिरी में खूब कृषि द्वारा पैदा हुआ है, इससे मलयजः। यह गगन चुम्बी (अभ्रंलिहो) आकाश के साथ बातें करने वाला तथा बहुत ऊँचे वृक्ष होते हैं, इससे दूर से ही जाने जाते हैं। जहाँ इनके वृक्ष होते हैं तहाँ Mal-air दुष्ट गन्ध नहीं रहती है। क्षय रोग और अन्य आरोग्य गृहों के आस–पास इसके वृक्ष खूब लगाये जाते हैं। इसके वृक्षों के सम्पर्क से सर्व रोगों का नाश होता है। इस प्रकार कविराज जी इसके गुणों पर मुग्ध हुये हैं। नवीन वनस्पतियों को इस पद्धति से संस्कृत में ग्रहण कर ही लेना चाहिए। कफ में दुर्गन्ध आती हो उसमें, दुष्टपीनस में, इन्फल्युएन्जा में, प्रतिश्याय में, यूकेलिप्टस का तैल अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। पाइमिया, सेप्टीसिमिया और प्रसूत ज्वरों में 5 बूंद की मात्रा में यह उत्तम औषधि मानी गयी है। विषमज्वर, ताणे, प्लीहावृद्धि को रोकता है। किन्तु यह उक्त रोगों में क्वीनाइन से बढ़िया काम नहीं करता है। पाचक और वातघ्न रूप में या मल में खराब बदबू आती हो ऐसे अजीर्णातिसार में यह उपयोगी है।

छोटे मल के कृमियों को मारने के लिये इस तैल की गुदा में पिचकारी दी जाती है। यूकेलिप्टस तैल इन्फल्युऐन्जा में बहुत उपयोगी कार्यकर है। इस तैल की 2–3 बूंदे शक्कर अथवा बतासा ऊपर अथवा मधु में डाल कर देवें।

शुद्ध मधु यह मिलाकर "Eucalyptus honey" नाम देकर बेचा जाता है। किन्तु बच्चों की सर्दी के रोगों में यह मधु काम में भी लाया जाता है। (राखालदासघोष)

(नि0 आ0 से साभार

उपयोग :

मालिश के लिये प्रयुक्त वायुनाशक तैलों में यूकेलिप्टस का तैल भी मिलाया जाता है। पार्श्वशूल, संधि शोथ आदि में सर्षप तैल के साथ यूकेलिप्टस का तैल मिलाकर मालिश करवाने से गम्भीर शोथ का विलयन तथा वेदना का शमन होता है। प्रतिश्याय, जीर्णकास एवं दुर्गन्धित ष्ठीवन में

रूमाल पर तैल छिड़क कर सूंघते हैं अथवा यूकेलिप्टस के पत्रों का फाण्ट (पत्र चूर्ण 1 तोला को 20 गुने उबलते जल में डालकर 10 मिनट बाद उतारकर छान लें) देते हैं। व्रण शोधनार्थ भी इसके तैल को पंचगुण तैल आदि योगों में मिलाते हैं।

पाश्चात्य मतानुसार :

यूकेलिप्टस के तैल का बाह्य प्रयोग त्वचा पर करने से अन्य उड़नशील तैलों की भाँति उत्तेजक, रक्तिमा या लाली पैदा करने वाला तथा प्रतिक्षोभक होता है। इसके अतिरिक्त यह साधारण जीवाणु वृद्धिरोधक तथा दुर्गन्ध नाशक भी होता है। इस क्रिया हेतु इसका प्रयोग प्रतिश्याय तथा इन्फ्ल्युएन्जा की प्रारम्भिक अवस्थाओं में आघ्राणन के रूप में किया जाता है।

एतदर्थ उष्ण जल में यूकेलिप्टस का तैल, मेंथाल एवं टिंक्चर बेन्जोइन मिलाकर उससे उत्पादित वाष्प (निकलने वाले वाष्प) का आघ्राणन किया जाता है।

जुकाम या प्रतिश्याय तथा गले की खराबी (स्वरभंग) आदि में सत पिपरमिन्ट (मेंथौल) के साथ बनी हुई मुखचक्रिकाओं को मुख में रखकर चूसते हैं। यूकेलिप्टस का तैल या इसके साथ अन्य उपयुक्त औषधियाँ मिलाकर उसका आघ्राणन श्वसन संस्थान के अनेक रोगों में उपयोगी पाया जाता है। अतएव उष्ण जल में यूकेलिप्टस का तैल मिलाकर भाप का आघ्राणन श्वासनलिका शोथ, कुकुर एवं प्रतिश्याय में किया जाता है। इसका प्रयोग सीकरयंत्र (Atomiser) के द्वारा भी कर सकते हैं। (सचित्र आयुर्वेद)

विशेष–इस तैल का उपयोग उदर सेवन और बाहर लगाने में दोनों प्रकार से होता है। इसमें पूतिहर (Antiseptic) गुण महत्व का है, फिर भी स्थानिक उग्रता उत्पन्न कराने के लिये जितना चाहिये उससे अधिक परिमाण में मर्यादा तोड़कर इसका उपयोग नहीं किया जाता है। इसे घाव और क्षत के मलहमों में मिलाया जाता है। अस्त्र चिकित्सा के पश्चात् ड्रेसिंग करने के लिये गोज, लिंट और रुई के साथ इसका उपयोग होता है। जीर्ण संधिवात की सूजन पर और पीठ में सुषुम्ना काण्ड (मेरुदण्ड) पर इसे चार गुने सरसों के तैल में मिलाकर मालिश कराई जाती है। फुफ्फुसकोथ (फुफ्फुस में सड़ाव), क्षय, चिरकारी और कफ पूर्ण श्वासनलिका प्रदाह (खाँसी) में 20 औंस जल में 60 बूंदें नीलगिरी तैल मिला, पात्र को अंगीठी पर चढ़ाकर उसकी वाष्प सुंघाई जाती है। जिस रोगी की देह पर पिड़िकायें निकल आयी हों, जो काली खाँसी अथवा कंठरोहणी से पीड़ित हों, उनको नीलगिरीतैल मिले हुये जल से वफारा देने पर लाभ पहुँच जाता है।

इसका उदर सेवन करने पर दुर्गन्ध दूर हो जाती है और प्रतिश्याय के आक्रमण का दमन होता है (नीलगिरी तेल सुंघाने पर प्रतिश्याय में लाभ पहुँच जाता है) इस तरह इन्फ्लुएन्जा (वातश्लैष्मिक ज्वर) और आमाशय प्रसेक को भी यह दूर कर देता है। ऐसी अवस्था में यह तैल 5 से 10 बूंदों तक शक्कर के साथ दिया जाता है। अपचन जन्य ज्वर में देने पर इससे लाभ पहुँच जाता है। अपचन और अग्निमांद्य के रोगी को यह बारम्बार दिया जाता है।

नाजुक प्रकृति के मनुष्यों को इसका गोंद देने पर अतिसार और प्रवाहिका में लाभ पहुँचता है।

(गां० और र० से साभार)

यूकेलिप्टस (नीलगिरी) के योग :

नीलगिरी तैल का मरहम–सरसों का तैल या वेसलीन 8 औंस, मोम 2 औंस और नीलगिरी तैल 2 औंस लेवें। पहले तैल या (बेसलीन) और मोम को मिला कर गरम करें। अच्छी तरह गल जाने पर कड़ाही को नीचे उतारें। उष्णता सामान्य रहने पर यूकेलिप्टस (नीलगिरी तैल) मिलाकर खुले मुँह की यानी मरहम को चीनी के पोट्स में भर देवें।

उपयोग–यह मलहम मर्दन करने में विशेष उपयोगी है। सिर दर्द, जन्तुओं का विष, संधिशोथ, आमवातिक शोथ, वायु से उत्पन्न पीड़ा, कमर की वेदना, उष्णजल आदि से झुलस जाना आदि पर यह लाभदायक है।

नीलगिरी पानों का फाण्ट–पानी को सोलह गुने उबलते हुये जल में डालकर आध घण्टा तक ढक देवें। फिर छानकर उपयोग करें। मात्रा 1 से 2 औंस। यह कफघ्न, दुर्गन्धनाशक, पूतिहर और मूत्रल है। इसके सेवन से ज्वरघ्न में स्वेद आता है शिर दर्द और हाथ पैर का टूटना बन्द हो जाता है एवं सारे शरीर में तेजी आ जाती है।

विशिष्ट योग :

सर्वगुण धारा–काफूर 5%, थायमोल 5%, मेंथोल 10%, ओयल यूकेलिप्टस 10%, लौंग तैल 1%, टिं. जिंजर 50%, अलकोहल 90% पर्याप्त मात्रा।

उपयोग–सर्व प्रकार के उदर रोगों में जैसे– कै, दस्त, जीमचलाना, अफारा, बदहजमी, गैस रोग इत्यादि।

मात्रा–एक से पाँच बूंद तक। पानी में मिलाकर कई बार ली जा सकती है।

नासौल योग–मेंथाल 40%, कपूर 30%, मिथाइल सैलिसिलेट 20% आयल यूकेलिप्टस 5%, आयल सासा फ्रांस पर्याप्त मात्रा।

उपयोग–सर्दी से उत्पन्न श्वास सम्बन्धी पीड़ा में जैसे–नाक रुकना, गले की खारिस, कंठ नली प्रदाह, ब्रांकाईटिस, प्रतिश्याय तथा दमा में लाभप्रद है।

मात्रा—जरूरत पड़ने पर एक या दो बूंद दोनों नासिकाओं में टपकाना चाहिये अथवा इनहेलर की सहायता से सूंघते रहिये।

प्रतिश्याय नाशक—यूकेलिप्टस आयल 4 ड्राम, मेंथोल 2 ड्राम, टि0 क्लोरोफार्म 2 ड्राम। 8–10 बूंद रूमाल पर डालकर या यन्त्र द्वारा स्प्रे के रूप में सूंघे (वात कफ ज्वर में)।

तुण्डिकाशोथ नाशक लेप—थायमोल 10 ग्रेन, यूकेलिप्टस आयल 15 बूंद, टैनिकग्लिसरीन 1 औंस फुरेरी से दिन में 2–3 बार गले में लगायें।

लिस्टरीन मंजन—लिस्टरीन से मिलता जुलता मंजन है। प्रेसिपिटेटेड चाक 1 पौंड, बढ़िया सफेद साबुन 5 ड्राम, शुद्ध सुहागा (बोरैक्स) 3 ड्राम, थाईमोल 20 ग्रेन, मेंथोल 20 ग्रेन, यूकेलिप्टस आयल 20 बूंद, एलकोहल ½ औंस।

इसे अच्छी तरह से बन्द बर्तनों में रखना चाहिये। यह सूखा मंजन है, परन्तु यदि रांगे की चिपकने वाली नलिकाओं में भर कर बेचना हो, तो इसमें आवश्यकतानुसार पानी मिलाकर गीला कर लेना चाहिये।

(ऐलौपैथिकसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह से साभार)

विशिष्ट योग :

(1) अर्क पुदीना। (2) नेबुलायूकेलिप्टोलिस कंपोजिटा। (3) वेपरमेंथालिस एट यूकेलिप्टाइ। (4) नेबुला यूकेलिप्टाइ (बी0पी0सी0) (5) अंगवेण्टम यूकेलिप्टाइ (आइ0 पी0 सी0)।

(सचित्र आयुर्वेद से साभार)

रक्त चन्दन—देखिये—भाग 3 में चन्दन लाल

रक्त रोहिड़ा नं० 1 (Tecomella undulata)

यह वटादि वर्ग और सोनकादि कुल (Bignoniaceae) का वृक्ष मध्यम कद का होता है। इसकी ऊँचाई 10 से 25 फुट तक होती है। इसमें मोटी शाखायें कम किन्तु पतली—पतली शाखायें बहुत निकली हुई होती हैं। शाखायें सीधी और अक्सर ऊँची चढ़ी हुई होती हैं। कोमल शाखायें बहुधा नीचे झुकी हुई होती हैं।

पान—लम्बे किन्तु तंग अनार के पत्तों की तरह दिखाई देते हैं। कोमल शाखाओं के पान पर अधिकतर कोमल रोयें देखने में आते हैं।

इसके बसन्त आगमन के पूर्व केशरिया रंग के बड़े, चमकदार और निर्गन्ध पुष्प आते हैं। इसकी फलियाँ 6 से 8 इंच तक लम्बी और मुड़ी हुई होती हैं और उन्हाले (गरमी) में पकती हैं।

मूल—वृक्ष के प्रमाण में मोटा और जमीन में गहरा गया हुआ होता है, इसमें से अलग—अलग जड़ें फूटकर जमीन में दूर तक जाकर अलग शाख सा निकलकर स्वतन्त्र झाड़ बन जाता है। मूलत्वक् भूरी और उस पर खड़े चीरे पड़े हुये होते हैं। अन्तर छाल मोटी हल्के लाल रंग की मजबूत रेशे वाली और रस युक्त होती है। गंध इमली के गूदे से मिलती, खट्टी और स्वाद कड़वास लिये कषैला और चरपरा होता है। कड़वापन चिरायते के समान बहुत देर तक जबान पर से नहीं जाता।

शाखें—शाखाओं का रंग राख के वर्ण का होता है। छाल ऊपर से रबर चढ़ी जैसी और उस पर उभरे चीरे पड़े हुये होते हैं। इसकी अन्दर की छाल हरापन लिये पीले रंग की होती है।

गन्ध—खारी जाल (पीलु) से मिलती हुई तेज और स्वाद कड़वा और चरपरा होता है।

रोहिडा रक्त

(Tecomella Undulata (G. Don.)

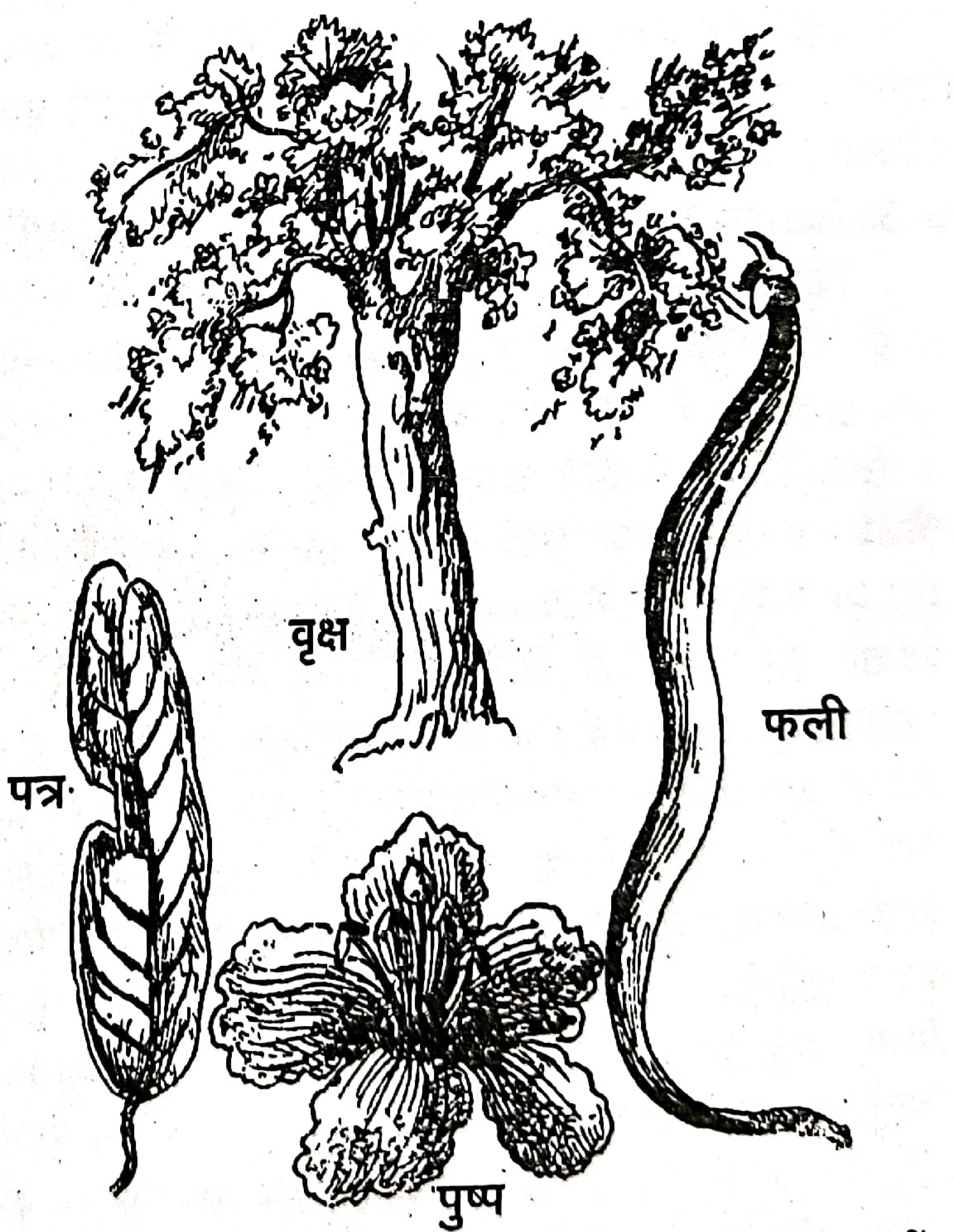

पान—आमने सामने आये हुए होते हैं, किन्तु कहीं—कहीं एकान्तर भी देखे जाते हैं, जो 3 से 6 इंच लम्बे और ½ से

1¼ इंच चौड़े होते हैं। पान की नोक ज्यादा करके बुट्टी होती हैं। पान की केवल बीच की नस नीचे तह से बाहर निकलती फीके सफेद रंग की स्पष्ट दिखायी देती है। पत्र दण्ड टेढ़ा ½ से ¾ इंच का होता है।

फूल–शाखाओं के किनारे सुन्दर केसरिया रंग के फूलों के गुच्छे आते हैं। पुष्प धारण करने वाली सींकें सूतली जैसी मोटी चलकत्ती और हरे रंग की होती है। एक सींक पर 2 से 3 फूल आये हुये होते हैं। पुष्प दण्ड ¼ से ½ इंच लम्बा। पुष्प पत्र दो होते हैं।

पुष्प बाह्य कोष–फीके केसरिया रंग का पाँच पत्रों का बना होता है, ये चौड़े और बुट्ठे होते हैं। इसमें से एक पत्र सबसे चौड़ा होता है। यह पौन इंच लम्बा और इतना ही ऊपर से चौड़ा होता है। पुष्पाभ्यन्तर कोष मुख के पास दो से अढ़ाई इंच व्यास का अन्दर से गहरा जामुनी और बहुत चमकता हुआ होता है। इस कोष का मुख बिछुवे के फूल के समान दो ओष्ठ से नीचे झुका हुआ और ऊपर से ओष्ठ में स्पष्ट दिखायी देते है। जब फूल खिलता है तब उसमें के पुंकेसर और स्त्री केसर ऊपर के ओष्ठ में स्पष्ट दिखायी देते हैं। पुंकेसर 5, ये फूल की पंखड़ी की नली के ऊपर आयी हुई होती है। स्त्री केसर नलिका से बहुत छोटी होती है। इन पाँच पुंकेसरों से दो सबसे लम्बी दो कुछ छोटी और एक सबसे छोटी होती है, ये पराग कोष रहित होती है। शेष चारों पुंकेसरों के सिरों पर पराग कोष होता है। पुंकेसर तन्तु फीके पीले रंग का और पराग कोष पीले रंग का होता है, जो पीछे से काले पड़ जाते हैं। सबसे लम्बे दो पुंकेसर सवा इंच से कुछ लम्बे और सबसे छोटा एक इंची, पराग कोष 1½ लाइन लम्बा, सहज लम्ब गोल और बुट्ठे अणी वाले होते हैं।

स्त्री केसर–पुष्प बाह्य कोष की बीचों–बीच एक चक्राकार पड़के मध्य से स्त्री केसर निकली हुई होती है। रंग फीका पीला, नलिका पौने दो इंच लम्बी, नलिकाग्र मुख दो विभाग का, नागफन जैसा चपटा होता है।

फली–6 से 8 इंच लम्बी, $\frac{1}{3}$ इंच चौड़ी, जरा टेढ़ी और चपटी होती है।

बीज–पतले, भूरे ¾ इंच से 1 इंच लम्बे और $\frac{1}{3}$ इंच चौड़े होते हैं।

नोट–राज निघण्टुकार ने रोहिड़ा के दो भेद बतलाये हैं, लाल और सफेद। ये दोनों भेद राजस्थान में होते हैं। लाल के फूल गहरे लाल होते हैं और सफेद के फूल हल्के पीले। इसी प्रकार पलाश के भी दो भेद होते हैं। सफेद पलाश जिसको कहा जाता है उसके भी फूल फीके पीले ही आते हैं, बिल्कुल सफेद नहीं। अतः उपरोक्त निघण्टु में वर्णित दोनों रोहिणों के भेद होते हैं और मौजूद हैं।

प्रयोज्यांग–त्वक् एवं सर्वांग।

उत्पत्ति स्थान :

बिलोचिस्तान, अरबस्तान, पश्चिमी पाकिस्तान, पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, राजस्थान, पूर्व में यमुना तक; कलकत्ते की ओर सुन्दर फूलों के लिये लगाते हैं। बंगाल के फरीदपुर जिले में अधिक पाये जाते हैं। यह आर्द्र जमीन में खूब बढ़ता है।

नाम :

सं0–रोहितक, रोहितकः, दाड़िम, पुष्पकः, दाड़िमच्छदः। हि0–रक्त रोहिड़ा, रोहेड़ा। म0–रक्त रोहिड़ा। गु0–रोहिडो। पं0–रुहेड़ा। बं0–हरिण हाडा, रोडा, रयंना, पित्तराज। क0–यरडूमल, मुत्तलू। तै0–मुलुमोदुग चेट्टु। ले0–Tecomella undulata g. Don (टेकोमाअन्ड्युलेटा)।

रासायनिक संगठन :

इसमें दो तरह का पीला गोंद, श्वेतसार, रंजक वस्तु, टेनिन या लवण पाये जाते हैं।

गुणधर्म और प्रयोग :

संक्षेप में–रस कषाय, कटु। वीर्य–शीत। विपाक–कटु। गुण–सारक, रक्त शोधक, स्निग्ध। दोष शमन–कफ पित्त। रोहिड़ा को छाल–रसायन, कषाय और बल्य है। यकृत प्लीहावृद्धि, स्थौल्य एवं दुर्बलता में यह प्रयोग किया ज़ाता है। –भा0 प्र0 नि0

रोहेड़ा–यकृत्–प्लीहा, गुल्म और उदररोग नाशक है। (राजबल्लभ) दोनों प्रकार के रोहेड़े–स्निग्ध, कषेले, चरपरे, रक्त प्रसादक, कड़वे, शीतल, सारक, कृमि, प्लीहा रोग, रुधिर विकार, व्रण, कर्ण रोग, विष, नेत्र रोग, गुल्म, यकृत् रोग, कफ, वात, विबन्ध, मांस, मेद सम्बन्धी शूल, आनाह और भूत बाधा को दूर करते हैं। –शा0 नि0

रोहेड़ा–यकृत् प्लीहा, गुल्म और उदर रोग नाशक है तथा दस्तावर है। –घ0 नि0

कैयदेव निघण्टु ने कासनाशक विशेष लिखा है–

रोहेड़ा–यकृत्–प्लीहा, उदर रोग, कामला, मूढ़मार आदि पर इसका गुण निश्चित् है। –नि0 आ0

नव्य मतानुसार :

रक्त रोहिणा–रसायन, ग्राही, बल्य है। यकृत् प्लीहा वृद्धि में, मेद रोग में, अशक्ति में यह काम में लिया जाता है। (डॉ0 आर0 एन0 खोरी) इसकी काण्ड त्वक् उपदंश में लाभकारी है। (क0 चौपड़ा) रक्त रोहिड़े की छाल जमे हुये रक्त को बिखेरने में अक्सीर मानी जाती है। इसलिये चोट और पछाड़ में अगर कहीं रक्त जम गया हो तो इसकी छाल को औटाकर उसमें दूध मिलाकर पिलाते हैं। इसकी छाल

और पत्ते क्षय, खांसी और ज्वर में लाभ पहुंचाते हैं। इसकी छाल तिल्ली और यकृत सम्बन्धी उदर व्याधियों में उपयोगी मानी जाती है।

प्रसव के बाद स्त्री का शरीर अशक्त हो जाय तथा किसी प्रकार के रोग से शरीर निर्बल हो गया हो तो उसमें रक्त रोहिड़ा की छाल या पान का क्वाथ या चूर्ण दूध मिश्री के साथ दिया जाता है।

रोहितक चाय–इसकी छाल के चूर्ण से एक प्रकार की गुलाबी चाय तैयार की जाती है। इसकी छाल के आधे तोले चूर्ण को 20 तोले खौलते हुये दूध में डाल देने से यह चाय तैयार होती है। यह चाय स्वास्थ्य और आयुवर्द्धक है।

उपयोग :

(1) कफ पित्तज प्रमेह में–बहेड़ा छाल, रक्त रोहिड़ा, कडू आदि के फलों का चूर्ण मधु में मिलाकर चाटने से प्रमेह मिटता है। (च0 चि0 अ0 6)

(2) यकृत् प्लीहा रोग–रक्त रोहिड़ा की छाल, हरड़े के चूर्ण को गोमूत्र की 7 भावना देकर सुखाने के बाद चूर्ण करके लेने से, कामला, गुल्म, प्रमेह, यकृत् प्लीहा वृद्धि, अर्श, उदर कृमि आदि को मिटाता है।(च0 चि0 अ0 18)

(3) सफेद प्रदर में–रक्त रोहिड़ा की मूल की छाल का चूर्ण पीने से सफेद प्रदर मिटता है। (च0 चि0 अ0 30, 144)

(4) कुष्ठ में–रक्त रोहिड़ा का क्वाथ स्नान में, पीने में और लेप में काम में लावें। (च0 चि0 अ0 7, 126)

(5) चरक ने हृदय रोग चिकित्सा में रक्त रोहिड़े की योजना की है। (च0 चि0 अ0 26, 96)

विशिष्ट योग :

(1) रोहितकादि कल्कः (बंगसेन स्त्री रोगा0)–रोहिड़े की जड़ की छाल को पानी के साथ पीसकर कल्क बनावें। इसमें मिश्री और शहद मिलाकर पीने से सफेद प्रदर नष्ट होता है। इस प्रयोग को केवल 3 दिन प्रयुक्त करने से ही प्रदर रोग नष्ट हो जाता है।

(2) रोहितकादि योगः (यो0 र0 उदर रो0)–रोहिड़ा की छाल, हर्र, सौंठ समान भाग लेकर यथाविधि चूर्ण बनावें। इसे यथोचित मात्रानुसार गौमूत्र के साथ सेवन से समस्त प्रकार के उदर, प्लीहा, प्रमेह, अर्श, कृमि और गुल्म का नाश होता है।

(3) रोहितकाद्य चूर्णम् (भै0 र0 प्लीह–यकृद्रोगे)–रोहिड़े की छाल, यवक्षार, चिरायता, कुटकी, मोथा, नवसादर, अतीस, सोंठ प्रत्येक को समभाग में मिश्रित कर 1 माशा परिमाण में रोगी सेवन करें।

अनुपान–शीतल जल। इसके सेवन से यकृद्रोग शीघ्र नष्ट होता है।

(4) महा रोहितक घृतम् (भै0 र0 प्लीह–यकृद्रोगे) क्वाथ– (1) 100 पल (6¼ सेर) रोहिड़े की छाल को 32 सेर पानी में पकावें और 8 सेर पानी शेष रहने पर छान लें।

(2) 4 सेर बेर का गूदा (कोल का गूदा) को 32 सेर पानी में पकावें और 8 सेर शेष रहने पर छान लें।

कल्क–सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आमला, हींग अजवायन, तुम्बरू, विड नमक, जीरा, कालानमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायन की जड़, जवाखार, पोहकरमूल, वायविडंग, चीतामूल, हपुषा, चव और वच, प्रत्येक औषधि 1¼-1¼ तोला लेकर सबको एकत्र पीस लें।

विधि– 2 सेर घी में उपरोक्त क्वाथ तथा कल्क और 8 सेर बकरी का दूध मिलाकर पकावें। जब जलांश शुष्क हो जाय तो घृत को छान लें।

मात्रा– 2 तोले। अनुपान–यूष अथवा दूध। इसके सेवन से यकृत्, प्लीहोदर, प्लीह शूल, वृक्कशूल, कुक्षिशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, अरुचि, पाण्डु, कामला, विबन्ध, छर्दि अतिसार, तन्द्रा और ज्वर का नाश होता है।

नोट–मूल पाठ में अनुपान में मांस रस भी लिखा है परन्तु जो मांसाहारी नहीं हैं, उनके लिये उसकी आवश्यकता नहीं है।

(5) रोहितक घृतम् (भै0 र0 प्लीहा–यकृद्रोगे)–गौ घृत 2 प्रस्थ। क्वाथार्थ–रोहितक छाल 25 पल, वेर 2 प्रस्थ (32 पल), जल क्वाथ से आठ गुना (456 पल), अवशिष्ट क्वाथ 144 पल। कल्कार्थ–पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, प्रत्येक 1 पल, रोहीतक (रोहेड़ा) छाल 5 पल। इस घृत के सेवन से प्लीहा वृद्धि, गुल्म, ज्वर, कास, श्वास, कृमिरोग, पाण्डु कामला प्रभृति रोग शीघ्र नष्ट होते हैं। मात्रा–½ आधा तोला है।

(6) रोहितकावलेहः (भा0 भै0 र0 सं0 5938)–6¼ सेर रोहिड़े की छाल और 100 हर्रो को आठ गुने भैंस के मूत्र में पकावें; जब चौथा भाग शेष रहे तो छानकर उस क्वाथ में उपरोक्त 100 हर्रे और पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और दन्तीमूल का चूर्ण मिलाकर पुनः पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तो उतार लें।

इसमें से नित्य दो हर्र खाकर अवलेह चाटना चाहिये। इसके सेवन से प्लीहोदर और यकृतोदर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

(7) रोहीतक लौहम् (भै0 र0 प्लीह–यकृद्रोगे)–रोहीतक छाल, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद (वायविडंग, मोथा, चित्रक) प्रत्येक समभाग। सम्पूर्ण के समान लौह भस्म। इन्हें एकत्र

मिश्रित कर रोगी को सेवन करावें। मात्रा–2 रत्ती इसके सेवन से प्लीहा रोग, अग्रमांस तथा शोथ प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

(8) रोहीतकारिष्टः (भै0 र0 प्लीहा–यकृद्रोगे)–रोहीतक छाल दस सेर, जल 8 द्रोण, अवशिष्ट क्वाथ 2 द्रोण। इसको वस्त्र से छानकर ठण्डा होने पर 200 पल (बीस सेर) गुड़ घोलकर, धाय के फूल 16 पल, पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सौंठ), त्रिजात (छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेसर), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला); प्रत्येक का 1 पल का प्रक्षेप देकर एक मास तक पात्र में बन्दकर एकान्त में पड़ा रहने दें। मात्रा–सवा तोले से अढ़ाई तोले तक। इसके सेवन से सम्पूर्ण उदररोग, प्लीहा, गुल्म, अष्ठीला, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ तथा अरुचि प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

(9) रोहितकासवः (1) (गदनिग्रह) 6¼ सेर रोहिड़े की छाल को 128 सेर पानी में पकावें और 32 सेर पानी शेष रहने पर छान लें एवं उसके शीतल हो जाने पर उसमें निम्नलिखित प्रक्षेप द्रव्य मिलाकर सबको मिट्टी के स्वच्छ और घृत से चिकने पात्र में भरकर उसका मुख बन्द करके रख दें और 15 दिन बाद निकालकर छान लें।

प्रक्षेप द्रव्य–धाय के फूलों का चूर्ण 1 सेर गुड़ 6¼ सेर तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची, छोटी पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ का चूर्ण 5–5 तोले।

इसके सेवन से प्लीहा, प्लीहोदर, प्लीहाशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, हर प्रकार की अरुचि, मलावरोध, शूल, पांडु, कामला, छर्दि, अतिसार तथा जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

यह आसव तिल्ली को अवश्यमेव नष्ट कर देता है। (मात्रा–2 तोले)।

(10) रोहितकासवः (2) (गद निग्रह)– 6¼ सेर रोहिड़े की छाल को 32 सेर पानी में पकावें और 8 सेर पानी शेष रहने पर छान लें।

तदनन्तर उसमें 6¼ से गुड़, 5–5 तोले, हर्र, बहेड़ा, आमला का चूर्ण, 15 तोले धाय के फूलों का चूर्ण और 5–5 तोले पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीतामूल और सोंठ का चूर्ण मिलाकर सबको घृत से चिकने मिट्टी के पात्र में भर कर उसका मुख बन्द कर दें और पन्द्रह दिन पश्चात् छान लें।

इसके सेवन से ज्वर, गुल्म, अर्श, प्लीहा, अस्थिग्रह और पांडुरोग नष्ट होता है। (मात्रा–2 तोले)।

(11) रोहीतकासवः (3) (गद निग्रह)–12½ सेर रोहिड़े की छाल को 64 सेर पानी में पकावें और 16 सेर पानी शेष रहने पर छान लें।

तदनन्तर उसमें 12½ सेर गुड़, 6–6 पल (30–30 तोले) हर्र, बहेड़ा, आंवला, लौंग, जायफल, धाय के फूल और लौह का चूर्ण तथा 25–25 तोले दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ का चूर्ण मिलाकर सबको घृत से चिकने मिट्टी के पात्र में भरकर उसका मुख बन्द कर दें और 15 दिन बाद छान लें।

इसके सेवन से गुल्म, ज्वर, अरुचि, हृद्विकार, भगन्दर, तिल्ली, रक्तदोष और श्वास नष्ट हो जाती है। (मात्रा–2 तोले)।

रोहिड़ा नं0 2 (Aphanamixis Polystachya)

यह गुडूच्यादि वर्ग और निम्बादि कुल (Meliaceae) का वृक्ष होता है। इसका वृक्ष 30 से 70 फीट ऊँचा गहरे हरे पत्तों से आच्छादित होता है। पत्र–एक से तीन फुट। पत्रिका 3 से 9 इंच लम्बी, $1\frac{1}{3}$ इंच चौड़ी। पुं पुष्प दण्ड, पत्र की दीर्घता की अपेक्षा कुछ छोटा और समान। पुं पुष्प $\frac{1}{8}$ इंची, स्त्री पुष्प ¼ इंची लम्बा। फल–चिकने, गोलाकार, हल्के पीत वर्ण अथवा ईषत् लालवर्ण, 1–1 इंच लम्बा, नरम और शांस युक्त। फल के बीजों में तैल होता है जो निकालकर प्रयोग में लाया जा सकता है। वर्षाकाल में फूल होते हैं।

उत्पत्ति स्थान :

डॉ0 हूकर साहब–सिक्किम, तेराई और कारसिषां से इस वृक्ष को संग्रह किया था। इसके पत्ते बड़े, पत्रिका 12 से 15 इंच लम्बी एवं 3 से 7 इंच विस्तृत (चौड़ी) बोटेनिकल गार्डन शिवपुर (कलकत्ता) में इस रोहिड़े के काफी वृक्ष हैं। यह आसाम, सिलहट, काछाड़, अयोध्या, पूर्वी बंगाल, पश्चिम घाट, बर्म्मा, कोंकण, हुगली, हावड़ा, 24 परगना में भी होता है।

नाम :

सं0–रोहितक, बं0–तिक्तराज, पित्तराज, रोडा, रयना। हि0–हरिन हाडा। ता0–सुरन। ते0–मुञ्चकुञ्छ। ले0–Aphanamixis polystachya (Wall) parker (अफानामिक्सिस पोलिस्टेचिया)।

प्रयोज्य अंग–वृक्ष की त्वक् और तैल।

मात्रा–क्वाथ 5 से 10 तोला। कल्क 2 से 4 माशा।

गुणधर्म और प्रयोग :

इसकी छाल धारकी (Watt वौट) पक्व फलों की मींगी

का तैल वातरोग में प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल चरपरी, रसायन, कषाय और उदर रोगों में लाभकारी है।

विशेष—रक्त रोहिडा नं0 1 (Tecomella undulata) ही असली रक्त रोहिड़ा है और उसी में ही निघण्टुओं में वर्णित सारे गुण विद्यमान हैं तथा रक्त रोहिड़े से जितने बनाने वाले योग हैं उन सब में उसी रक्त रोहिड़े का प्रयोग करना चाहिए।

—सम्पादक

रक्त रोहिड़ा नं० 3 (Rhamnus Wightii)

यह बदरीकुल (Rhamnace) की एक वनस्पति होती है। इस वनस्पति की बहुत बड़ी झाड़ी होती है। इसके पत्ते आमने–सामने लगते हैं और ये कंगूरेदार होते हैं। इसकी छाल मोटी कठोर और लाल रंग की होती है।

उत्पत्ति स्थान :

यह झाड़ी पश्चिम घाट, नीलगिरी पर्वत और लंका में बहुत ऊँचे स्थानों पर पैदा होती है।

नाम :

सं0—रक्त रोहित। बम्बई—रक्तरोहिडा। ता0—पेपुल्ला। अं0—Indian buckthorn (इंडियन बुकथोर्न), ले0—Rhamnus wightii w. & A. (रहेमनस विटी)।

गुणधर्म और प्रयोग :

यह वनस्पति संकोचक, पौष्टिक और बाधा नाशक होती है। इसकी एक वर्ष पुरानी छाल का शर्बत बनाकर देने से दस्त के साथ खून आना बन्द हो जाता है और दस्त साफ होने लगता है। इसकी ताजी छाल को पानी में पीस कर सूजन और बवासीर के मस्सों पर लेप करते हैं।

नोट—यह शास्त्रोक्त रोहिड़ा नहीं है। रोहितक Tecomella undulata ही है और उसी में परिचय, गुणधर्म रोहितक के हैं। रोहितक का जहाँ–जहाँ प्रयोग आवे उसी को काम में लावें। परिचयार्थ चित्र दिया जा रहा है।

रक्त रोहिड़ा नं० 4 (Polygonum Glabrum)

यह चुक्रादिकुल (Polygonaceae) की एक छोटी वनस्पति होती है, जो जमीन पर पथरायली रहती है। इसकी डालियाँ कोमल हालत में हरी और पकने पर लाल हो जाती हैं। इसके पत्ते 3 इंच से लेकर 5 इंच तक लम्बे और आधे से लेकर एक इंच तक चौड़े होते हैं। इसके कोमल पत्ते लाल रंग के होते हैं और फूल गुलाबी रंग के।

उत्पत्ति स्थान :

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष में पैदा होती है।

नाम :

बम्बई—रक्त रोहिड़ा। बं0—बिहागनी। आसाम—पथारुआ, लर बोरना। संथाली—जिओटी। ता0—अटलारी। ले0—Polygonum Glabrum (पौलीगोनम् ग्लेब्रम)।

गुणधर्म और प्रयोग :

इस वनस्पति का शीत निर्यास बम्बई के अन्दर उदरशूल (Colic) को रोकने के लिये दिया जाता है।

छोटा नागपुर में इसके पत्ते पसली के दर्द को दूर करने के काम में लिये जाते हैं और आसाम में यह वनस्पति ज्वर को दूर करने के काम में ली जाती है।

(ब0 चं0 से साभार)

नोट—इस वनस्पति का क्षुप होता है, जैसा कि वर्णन से स्पष्ट है। अर्थात् यह भी आपका शास्त्रोक्त रोहिड़ा नहीं है। रोहिड़े का वृक्ष होता है अतः रक्त रोहिड़ो नं0 1 ही असली रोहिड़ा है और उसी में शास्त्र में लिखित गुण हैं। जिस प्रकार सायंटीफिक नाम एक वनस्पति का एक ही है और वो नाम दूसरी वनस्पति का नहीं है। इसी प्रकार उपरोक्त चालू भ्रांन्ति को दूर करके वैद्य समाज को भी एक वनस्पति एक ही नाम का निर्णय कर शीघ्र सचित्र निघण्टु का निर्णय करना आवश्यक है और यह कामकेन्द्रीय सरकार के स्तर द्वारा किया जाना चाहिये जो अत्यन्त जरूरी है।

—सम्पादक

विशेष—श्रद्धेय पूज्य बापालाला जी ने अपने निघण्टु आदर्श उत्तरार्ध के पृष्ठ 186 में लिखा कि Tecomella undulata और Amoora Rohitaka के सिवाय Rhamnus wightii (N. O. Rhamnaceae) और (Polygonum glabrum (N. O. Polygonacea)।

इन दोनों का भी रक्त रोहिड़ा के नाम से वर्णन आता है। बम्बई की ओर के बाजारों में इन दोनों को भी रक्त रोहिड़ा के नाम से कहा जाता है। इन चारों में सच्चा रक्त रोहिड़ा Tecomella undulata है। इसका दातव्य औषधालयों में परीक्षण करने से सच्चाई प्रत्यक्ष हो जायेगी।

रोहिड़ा नं0 4 (Aphanamixis polystachya) यह निम्बादिक कुल (Meliaceae) का एक वृक्ष होता है। जिसको Amoora Rohitaka W. & A. भी कहते हैं।

रतनजोग (Anemone obtusiloba)

यह वत्सनाभादि कुल (Rananculaceae) की एक वर्षजीवी वनस्पति होती है। इसकी जड़ कन्द के रूप में होती है। इसके फूल सफेद और नीले रंग के होते हैं।

उत्पत्ति स्थान :

यह हिमालय में काश्मीर से लेकर सिक्किम तक 8 हजार फीट से 15 हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

प्रयोज्य अंग—मूल।

नाम :

हि0—रतन जोग। पं0—रतनजोग, पाडर। कुमाऊँ—रतन जोग, काकरिया। ले0—Anemon obtusiloba D. Don. (एनेमोन आबटुसीलोबा)।

गुणधर्म और प्रयोग :

यूनानी मतानुसार इसकी छाल और पत्ते गरम, खुश्क और कड़वे होते हैं। ये तिल्ली, गुर्दे की शिकायतों को दूर करते हैं, पीलिया में लाभ पहुंचाते हैं। मुंह के छालों को दूर करते हैं। इनको कुछ अधिक मात्रा में खा लेने से सिर में दर्द पैदा होता है। स्टेवर्ट के मतानुसार इसकी जड़ को कुचलकर दूध के साथ मिलाकर पिलाने से शस्त्र से लगे हुये जख्मों में लाभ होता है। कहीं—कहीं पर यह वनस्पति छाला उठाने वाले द्रव्य की तरह उपयोग में ली जाती है।

इसके बीजों को पेट में देने से वे वमन और दस्त पैदा करते हैं। इसके बीजों का तैल सन्धिवात में उपयोग किया जाता है।

रतनजोत (Onosma Echioides)

यह श्लेष्मान्तकादि कुल (Boraginaceae) की वनस्पति है जो हिमालय में काश्मीर से कुमाऊँ तक 5 हजार फीट की ऊँचाई से 9 हजार फीट तक और बिलोचिस्तान में पैदा होती है।

प्रयोज्यांग—पत्र, पुष्प और मूल।

नाम :

सं0—धामनी, अंजनकेशी, कपोत चरणा, नाली, नलिनी, नर्तकी, रक्तदला, स्तुत्या। हि0—रतनजोत। पं0—लाल जरी, महारंगा, रतनजोत। नेपाल—नेवार, महारंगी। ले0—Onosma echioides Linn. (ओनोस्मा इचिआइडस)।

गुणधर्म और प्रयोग :

आयुर्वेद मतानुसार इसका पौधा कड़वा, तीक्ष्ण, मृदु विरेचक, कृमि नाशक और विष विकार को दूर करने वाला होता है। यह नेत्र रोग, खाँसी, उदरशूल, मूत्रकृच्छ्र, प्यास, खुजली, श्वेत कुष्ठ, ज्वर, जख्म, बवासीर, मूत्राशय की पथरी और रक्त की अव्यवस्था को दूर करता है।

इसकी जड़ को कुचलकर फोड़े—फुन्सियों पर लेप करने से लाभ होता है। इसके पत्ते धातु परिवर्तक होते हैं और इसके फूल उत्तेजक और हृदय के लिये पौष्टिक होते हैं। ये हृदय की धड़कन (Palpitation of heart) और सन्धिवात के अन्दर उपयोगी समझे जाते हैं। इसके पत्तों का चूर्ण बच्चों को देने से विरेचक द्रव्य का काम करता है। चर्म रोगों में इसकी जड़ों का लेप किया जाता है।

इस वनस्पति से एक प्रकार का लाल रंग प्राप्त किया जाता है जो तैलों में रंग देने के काम में लिया ज़ाता है।

उपयोग :

(1) गठिया में—रतनजोत को तैल में औटाकर उस तैल की मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

(2) मिर्गी में—रतनजोत को पीसकर नाक में टपकाने से मिर्गी वाले की मूर्च्छा मिटती है।

(3) हृदय रोग में—रतनजोत के पत्तों को औटाकर पिलाने से हृदय को बल मिलता है और उसकी अस्वाभाविक धड़कन मिट जाती है।

(4) रुधिर विकार—इसके पत्तों के रस में शहद मिला कर पिलाने से रुधिर विकार मिट जाता है।

रतनजोत (Onosma echioides Linn.)

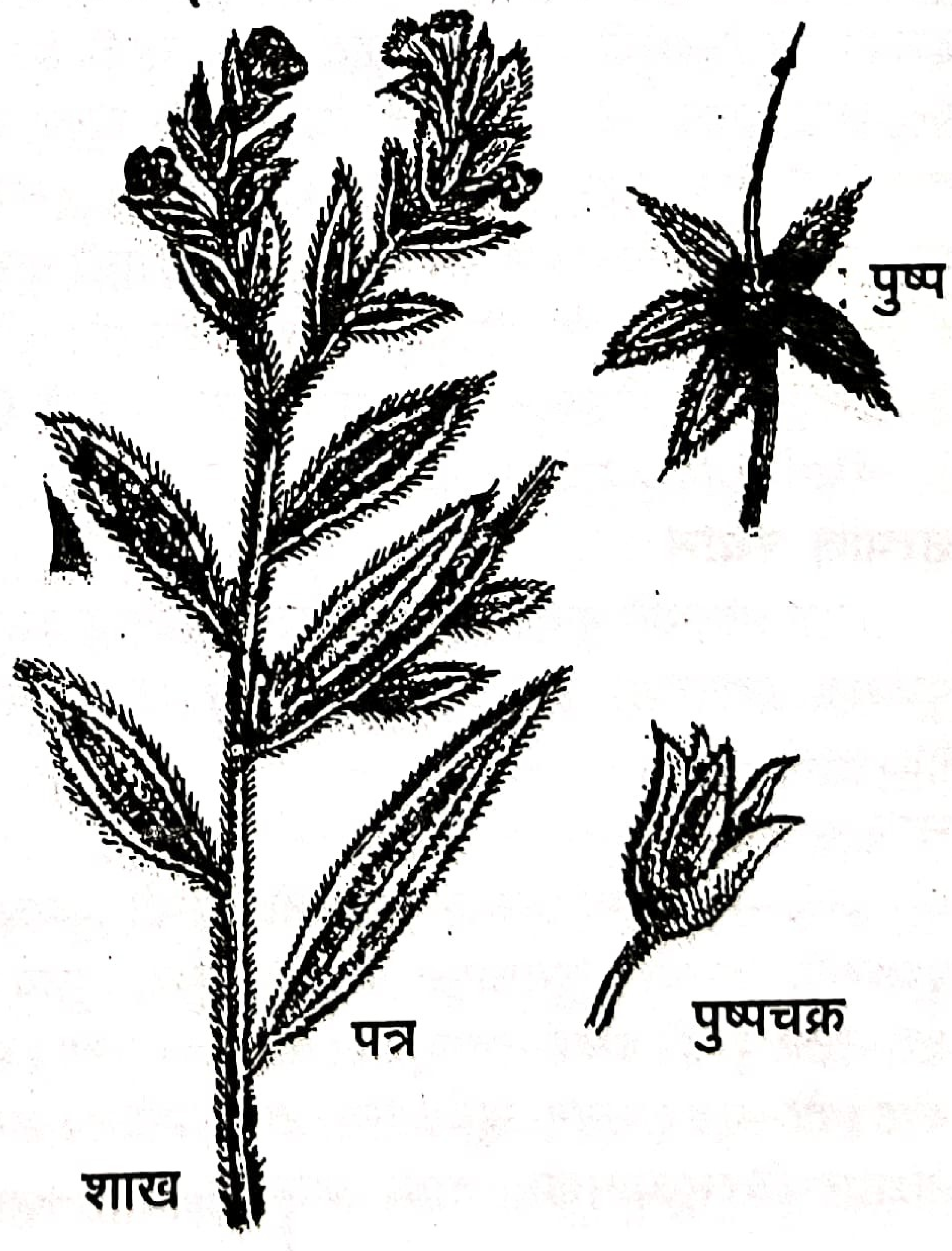

रतन जोत नं० 2 (Rotentilla Napalensis)

यह शतपत्री कुल (Rosaceae) की एक वर्ष जीवी वनस्पति होती है। इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं।

उत्पत्ति स्थान :

यह वनस्पति हिमालय में मुरी काश्मीर से लेकर कुमाऊँ तक 5 हजार फीट से 8 हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

नाम :

पं0–रतनजोत। ले0–Potentilla Nepalensis hook (पोटेंटिला नेपालेसिस)।

गुणधर्म और प्रयोग :

इसकी जड़ शोधक मानी जाती है। इसकी जड़ की राख को तैल में मिलाकर जले हुये स्थान पर लगाने से शान्ति होती है। (ब0 चं0 से साभार)

रतन जोत नं० 3 (Clausena Pentaphylla)

यह शतापादि कुल (Rutaceae) की एक सीधी झाड़ी होती है। उसकी ऊँचाई एक फुट से लेकर ढाई फुट तक होती है। इसके पत्ते एक के बाद एक लगे हुये रहते हैं। इसके फूल कुछ पीलापन लिये हुये रहते हैं। इसके फल छोटे–छोटे रसदार पीले तथा नारंगी रंग के होते हैं।

प्रयोज्य अंग–पत्र, पुष्प।

उत्पत्ति स्थान :

यह वनस्पति कुमाऊँ, नेपाल, सिक्किम, चम्पारन और अवध के जंगलों में पैदा होती है।

नाम :

हि0–रतनजोत, रोवाना, सूरजमुख, थारु। ले0 Clausena Pentaphylla (Rosela) D.C.

गुणधर्म और प्रयोग :

इस वनस्पति की छाल पशु चिकित्सा के अन्दर बहुत उपयोगी होती है। इसके चूर्ण को मीठे तैल में मिला ताजा जख्मों पर लगाने के काम में लिया जाता है। मांस पेशियाँ और जोड़ों की ऐंठन तथा मोच और रगड़ में इसके चूर्ण को 15 मिनट तक मीठे तैल में औटाकर पुल्टिस की तरह लगाया जाता है।

रतन पुरुष (Ionidium Enneaspermum)

यह वनफशादि कुल (Violaceae) की बहु वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति 6 से लेकर 10 इंच तक ऊँची होती है। इसकी छोटी–छोटी शाखायें बहुत फैली रहती हैं। इसके पत्ते छोटे, बरछी के आकार के डेढ़ इंच से लेकर दो इंच तक लम्बे और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल छोटे लाल और किरमजी रंग के होते हैं। इसकी जड़ें 3 से 4 इंच तक लम्बी और पीलापन लिये सफेद रंग की होती हैं। इसके बीज पीलापन लिये सफेद रंग के होते हैं।

प्रयोज्यांग–सर्वांग।

उत्पत्ति स्थान :

यह वनस्पति बुन्देलखण्ड, आगरा, बंगाल, मद्रास प्रदेश, गुजरात, खानदेश, कर्णाटक, अंकलेश्वर और सिलोन में पैदा होती है।

नाम :

सं0–स्थल पद्म, स्थल पद्मिनी, चारटी, पुष्कर नादि, पुष्करनी, शारदा, सुगन्धमूल, लक्ष्मी श्रेष्ठ, पुरुष रत्न। हि0–रतन पुरुष। बम्बई–रतनपुरुष। म0–रतन पुरुष। बं0–नुन बोरा। ते0–पुरुष रत्नम्, सूर्यकान्ति। ता0–प्रोरीलेट तमाराइ। संथाल–विरसूरजमुखी, टांड़ी सोल। ले0– Ionidium enneaspermum D.C. (आयो निडियम एनेसपरमम), Ionidieam suffruticosum Ging (आयोनिडियम सफ्रूटीकोसम) और Hibanthusenneaspermum (हायबन्थस एनेस परमम)।

गुणधर्म और प्रयोग :

इन वनस्पति का पौधा कड़वा, कसैला, सहज सुपाच्य कफ पित्त, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय की पथरी, अतिसार, वमन, दाह, चित्तभ्रम, अनैच्छिक वीर्यस्राव, रक्त विकार, दमा, मिर्गी, खांसी में लाभ पहुंचाता है। यह स्तनों को कठोर करता है। संथाल जाति के लोग इसकी जड़ को बच्चों के आंतों से सम्बन्धित रोगों को दूर करने के लिये देते हैं। रतन पुरुष में शीतल, स्नेह और मूत्रल धर्म रहते हैं। इसका स्नेहन धर्म उत्तम होता है। इसका मुलहठी के साथ काढ़ा बनाकर देने से सुजाक की जलन कम होती है। इसके चूर्ण की गोलियां बनाकर देने से खांसी का त्रास कम हो जाता है। गर्मी की वजह से होने वाले सिर दर्द में इसके स्वरस को तैल के साथ मिलाकर सिर पर मालिश करने से शान्ति मिलती है। फल का लेप–वृश्चिक दंश में उपयोगी है। सिद्ध संप्रदाय और आंध्र के वैद्य इसका खूब प्रयोग करते हैं।

रतालू (Ipomoea Batata)

यह शाक वर्ग और त्रिवृत्तादिकुल (Convulaceae) की एक लता होती है जिसके कन्द को रतालु कहते हैं। लाल और सफेद दो तरह का होता है। इसका कन्द शाक बनाने के काम में आता है।

प्रयोज्य अंग–पत्र और कन्द।

उत्पत्ति स्थान :

समग्र भारत में शाकार्य कृषि की जाती है।

नाम :

सं0–रक्तालु, रक्त पिण्डक, रक्तकन्द। हि0–रतालू। गु0–रतालू। म0–पांडरे रतालें, लाल रतालें। बं0–लाल पिंडालू। फा0–जमीकन्द। उर्दू–रतालू। ले0–Ipomoea batata Linn (आइपोमोइया बटाटा)।

गुणधर्म और प्रयोग :

सफेद रतालू–शीतल, मधुर, भारी और कामोद्दीपक होता है। यह दाह, शोष, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है। लाल रतालू–शीतल, मधुर, खट्टी, भारी बलकारक और पौष्टिक होता है। यह दाह, पित्त और श्रम का नाश करता है।

बिच्छू के विष पर रतालू की बेल के पत्तों को पीस कर लगाने से तथा सूखे हुए रतालुओं को पानी में पीसकर लगाने से शान्ति मिलती है। (ब0 च0)

रनफनास (Artocarpus Hirsutus)

यह वटादि कुल (Urticaceae) की एक वनस्पति है

उत्पत्ति स्थान :

यह पश्चिमी घाट से उत्तरी किनारा से मलाबार, कुर्ग ट्रावनकोर में पैदा होती है।

नाम :

बम्बई–महाराष्ट्र–रन फनास। हि0–रन फनास। मल0–अन्निजी, ता0–अन्जाली। ले0–Artocarpus hirsutus Lam (आर्टोकार्पस हिरसुटस)।

गुणधर्म और प्रयोग :

इसके सूखे पत्ते और रस नरकचूर और कपूर के साथ मिलाकर बद, गांठे और अण्डकोष की सूजन पर लगाये जाते हैं।

रस भरी (Physalis Puruviana) देखिये 'टंकारी' भाग 3 में।

राई (Brassica Juncea)

यह धान्यवर्ग और राजिकादि कुल (Cruciferae) का वर्षायु फसल उनालु में होने वाला क्षुप है। राई की फसल रबी या उनालु की फसल बोने के समय बोयी जाती है और ग्रीष्म में पक जाती है। इसके पान मूली के पान से कुछ मिलते हुए होते हैं। नीचे के चौड़े, बीच के मध्य और ऊपर के छोटे होते हैं। इसका पौधा दो से चार फीट तक ऊँचा होता है, मूल रेशेदार, तना श्वेताभ हरित। शाखा छोटी चतुष्कोणीय होती है। इसके तेजस्वी पीले फूल आते हैं। छोटी फली के रूप में फल जाते हैं। जिसमें लाल दाने निकलते हैं, जिसको बोल चाल में राई कहते हैं। राई का क्षुप सुन्दर होता है। इसको सब जानते हैं। इसके पत्तों का साग बनाकर खाया जाता है।

उत्पत्ति स्थान :

यह भारत, पूर्वी एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका में बहुतायत से प्राप्त होती है। इसको समग्र भारतवर्ष में कृषि द्वारा पैदा किया जाता है।

नाम :

सं0–राजिका, राजी, आसुरी, तीक्ष्णगंधा। हि0, गु0, राज0–राई। म0–मोहरी। बं0–राइ सरिशा। काश्मीर–आसुर। ता0–कुडुघम्। सि0–खदल। काठि0–ओहर। क0–सासिवे, कडुघु। तै0–अवालु। मल0–कडुक। अ0–खर्दल, कुब्र। फा0–सरशफ। अं0–Indian mustard (इण्डियन मस्टर्ड)। ले0–Brassica Juncea (Linn), Czern. & Coss (ब्रेसिका जुंसिया) Brassica integrifolia west. (ब्रेसिया इन्टेग्रीफोलिया)।

रासायनिक संगठन :

बीज में मायरोसीन (Myrosin) और सिनिग्रिन (Sinigrin) अर्थात् पोटासियम माइरोनेट (Potassium myronate) 0.5% अनुत्पत तैल 25%, और सिनपीन (Sinapine) प्रभृति द्रव्य होते हैं।

गुणधर्म और प्रभाव :

संक्षेप–रस कटु, तिक्त, वीर्य–उष्ण; विपाक–कटु; गुण–तीक्ष्ण, दाहकर, दोष शमन–वात कफ, पित्तकर।

राई–चरपरी, कड़वी, गरम, वात, प्लीहा और शूल नाशक है। दाहजनक, पित्तकारक, नेत्र और वृक्कों को प्रदूषित करती है तथा कफ, गुल्म और कृमि रोग को हरने वाली है। –रा0 नि0

राई–कफपित्त नाशक, तीक्ष्ण, गरम, रक्त पित्तकारक किंचित् रूखी अग्निवर्द्धक तथा कण्डू, कुष्ठ, कोष्ठरोग और

कृमिरोग को दूर करती है। काली राई के गुण भी राई के समान हैं। विशेष करके अत्यन्त तीक्ष्ण है।

राई के पत्तों का शाक चरपरा, गरम, बलकारक, स्वादिष्ट, पित्तकारक, कृमिनाशक, वात कफ नाशक और कंठ रोग को दूर करते हैं। —भा० प्र० नि०

राई (तारामीरा)
(Brassica Nigra. (Linn.) Koch

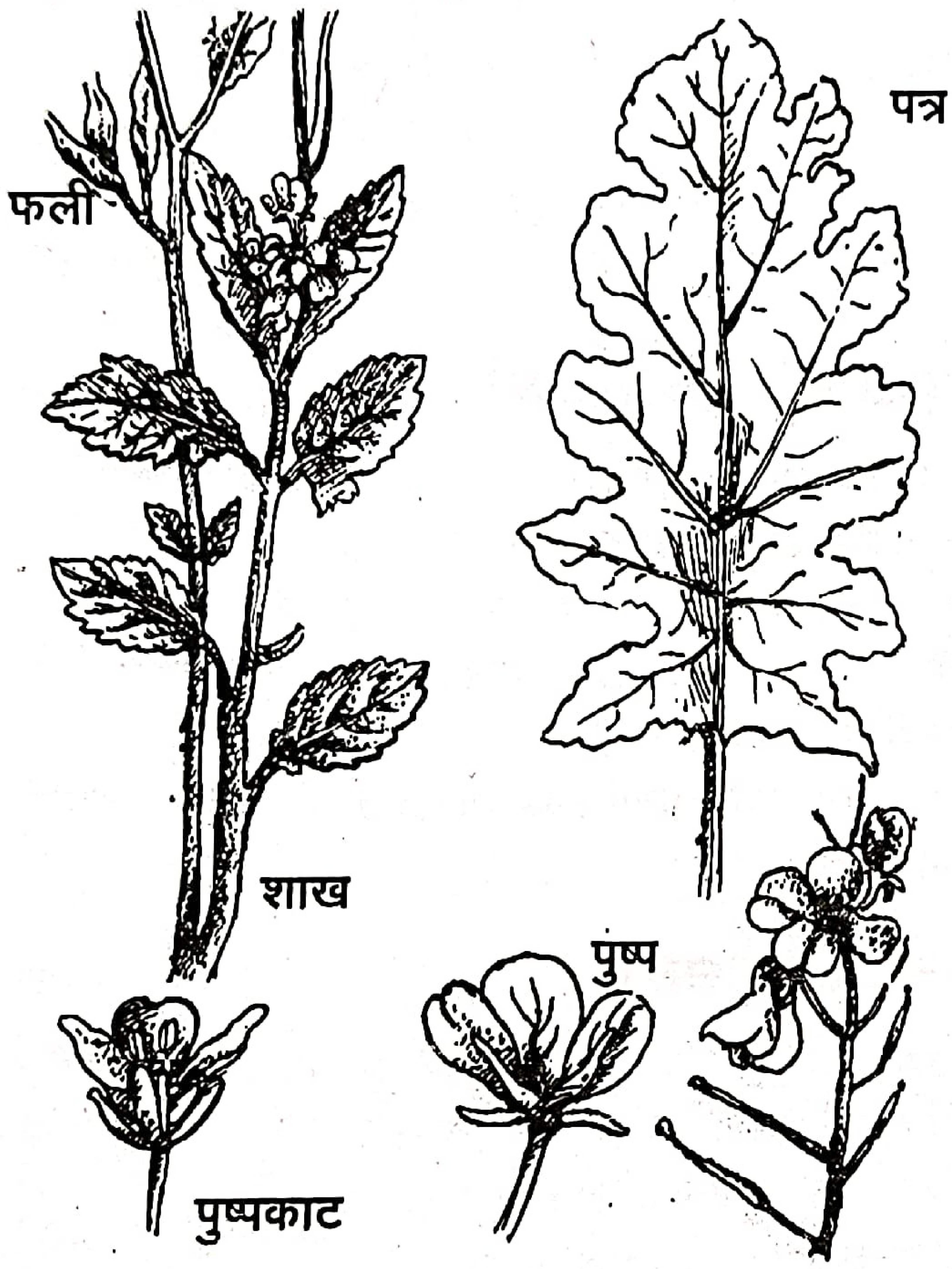

राई का तैल बंगाल की ओर लोग खाते हैं। राई का तैल वातज वेदना वाले अंगों पर मालिश करने के काम में आता है। तैल दीपन, चरपरा, लघु, तीक्ष्ण, वातहर, पुंसत्वनाशक, केश्य, त्वचा दोषहर, कफघ्न और मेदोहर है। अर्श, सिर दर्द, कर्ण रोग, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और शीत पित्त को दूर करता है। यह विशेषतः मूत्रकृच्छ्रकारक है।

नव्य मतानुसार :

राई के तैल का प्रयोग—राई का तैल उड्डयनशील या ईषत् पीत होता है, वह ईथर में मिल जाता है। आपेक्षिक गुरुत्व 1015 से 1020 है। प्रायः 298 फार्नहाइट तापांश पर उबलने लग जाता है। यह तैल उग्रगन्ध, तीक्ष्ण और चरपरे स्वादु युक्त है। त्वचा पर लगाने से थोड़े ही समय में फायदा कर देता है। इस तैल का उपयोग डाक्टरी में राई का मर्दन (Liniment of mustard) में होता है।

इसके बीज गरम, पसीना लाने वाले और पाचन शक्ति को सहायता देने वाले होते हैं। ये शरीर के अन्दर होने वाले रक्त संचय की वजह से होने वाले आक्षेप, स्नायु सम्बन्धी विकृति और सन्धिवात में बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। मस्तिष्क की सुषुम्ना नाड़ी की अव्यवस्था में भी इनका उपयोग होता है।

बहुशः बीज का प्रलेप (Mustard plaster) का उपनाह (Mustard poultice) में व्यवहार होता है। पुलटिस बनाते समय समभाग आटा मिला लेना चाहिये, ताकि उसकी तीक्ष्णता कम हो जावे। यह फोड़ों को पकाने व फाड़ने तथा गठिया की शोथ में लाभकारी है। राजिका चूर्ण को गरम जल में हिलाने से विलेपी सी बन जाती है। यह प्रलेप (Plaster) है, जो शोथ व शूल वाले स्थान पर किया जाता है। 10—15 मिनट में स्थान लाल हो जाता है, वहाँ दाह प्रतीत होता है। जब वह असह्य हो, तब प्रलेप हटालें। वहाँ फुन्सियां भी हो जाती हैं, जिनका जल निकल जाने पर वैसलीन या मक्खन (कर्पूर सहित) लगा देना चाहिये। बच्चों के अथवा मर्म स्थानों पर प्रलेप मलमल के वस्त्र पर लगाकर करना चाहिये। यह सुगमता से हटाया जा सकता है। यह प्रलेप छाती, शिर, सन्धि, गर्भाशय आदि अंगों के शूल व शोथ में बहुत लाभकारी है। राई के स्थान पर सर्षप व तुवरी (तारामीरा) का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु वह राई जैसे तीक्ष्ण नहीं।

राई के 4—5 दाने खा लेने से पाचन शक्ति बढ़ जाती है, परन्तु 5—6 माशे राई को गरम पानी से निगल जाने पर वान्ति हो जाती है। अतः राजिका से अहिफेनादि निद्रा जनक विषों, ज्वर, आमाजीर्णादि रोगों में वान्ति कराई जाती है। राई का अधिक प्रयोग अम्लपित्त और आमाशय में क्षत करता है। —कै० नि०

शरीर के ऊपर राई की क्रिया हुलहुल बूटी के समान दर्शायी है। यह छोटी मात्रा में दीपन, पाचन, उत्तेजक और पसीना लाने वाली होती है। बड़ी मात्रा में यह वामक होती है। इसको बड़ी मात्रा में लेने से तुरन्त वमन होता है मगर यह वमन घातक नहीं होता।

बाह्योपचार है राई का लेप चिकित्सा शास्त्र के अन्दर एक बहुत मशहूर वस्तु है। जिस स्थान पर यह लेप किया जाता है वहाँ की त्वचा लाल हो जाती है और त्वचा के अन्दर की रक्तवाहिनियाँ उत्तेजित हो जाती हैं। जिससे उस भाग में शून्यता पैदा हो जाती है। इस लेप को अधिक समय तक रखने से उस स्थान पर छाला उत्पन्न हो जाता है। जिस स्थान पर यह लेप लगाया जाता है, उस स्थान के साथ शरीर के जिन—जिन हिस्सों का सम्बन्ध होता है, उन हिस्सों की रक्ताभिसरण क्रिया को मज्जा तन्तुओं के द्वारा

उत्तेजना मिलती है, जिससे उनकी विनिमय क्रिया सुधरती है। राई को गरम पानी में डालकर उस पानी से स्नान करने से त्वचा की रक्त वाहिनियों का विकास होता है, जिससे रक्त का दबाव कम पड़ता है। रक्त का दबाव कम होने से सूजन की कमी होती है। इसी से राई का लेप शोथनाशक माना जाता है।

जिन रोगों के साथ सूजन रहती है तथा जिसमें शरीर के अन्दर अन्तर्दाह रहता है, ऐसे रोगों में राई का लेप किया जाता है। फुफ्फुस की सूजन, फुफ्फुस कोष की सूजन, यकृत कोष की सूजन, श्वास नलिका की सूजन, बीज कोषों की सूजन, मस्तिष्क रोगों की सूजन इत्यादि रोगों में राई का लेप बहुत लाभ पहुंचाता है। ज्वर के अन्दर भ्रम को दूर करने के लिये ललाट के ऊपर राई का लेप किया जाता है। हृदय के ऊपर राई का लेप किया जाता है।

हैजे में जब रोगी को बहुत उल्टी दस्त होते हों और उसके शरीर में बांयटे चलते हों, अंगों में शिथिलता पैदा हो रही हो ऐसी स्थिति में राई का लेप करने से बहुत लाभ होता है। हैजे के अतिरिक्त भी जो दस्त, उल्टी होते हैं वे अगर किसी दूसरी औषधि से न रुकते हों तो राई का लेप करने से रुक जाते हैं।

राई के लेप की विधि– राई को ठण्डे पानी के साथ सिलपर महीन पीसकर उसको साफ मलमल के कपड़े के ऊपर पतला पतला लेपकर देना चाहिये। फिर उस कपड़े को जिधर राई लगी हुई हो उसकी दूसरी तरफ से जिस जगह लेप लगाना हो उस जगह रख देना चाहिये। राई के लेप को चमड़े की तरफ रखने से उसका प्रभाव यद्यपि जल्दी होता है पर उससे चमड़े पर फुंसियां पड़ने का डर रहता है, इसलिये जब तक विशेषतः जरूरत न पड़े तब तक इसका लेप कपड़े के ऊपर के बाजू ही रखना चाहिये।

राई के अन्दर एक प्रकार का तैल भी निकलता है। यह चमड़े की जलन और व्रणों के ऊपर लगाने के काम में आता है।

यूनानी मतानुसार :

प्रकृति–चौथे दर्जे में उष्ण एवं रूक्ष।

गुण कर्म–बाह्य प्रयोग से राई श्वयथु विलयन, लेखन शोणितोत्क्लेशक और विस्फोटजनन है। लेप करने से प्रथमतः दाह उत्पन्न करती है, इसके उपरान्त संशमन कर्म करती है। आंतरिक उपयोग से यह आमाशय को उद्दीप्त करके पाचन और क्षुधा की वृद्धि करती है और प्लीहा की सूजन उतारती है। अधिक प्रमाण में उपयोग करने से यह छर्दिजनन है। यह प्रधानतः शोथ विलयन, शोणितोत्क्लेशक और आहार पाचन है।

उपयोग :

कफोल्वण सन्निपात, पक्षवध, आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पार्श्वशूल और फुफ्फुस शोथ जैसे प्रायः शीतल रोगों में राई का लेप करते या उपयुक्त औषधि द्रव्यों के साथ मिला कर मर्दन करते हैं, आमाशय शूल, प्लीहा शूल और यकृच्छूल शमन करने के लिये इसका लेप करते हैं। शीत जन्य आर्त्तव स्तम्भ को दूर करने के लिये इसके क्वाथ में रोगिणी को बैठाते हैं। शोणितोत्क्लेशक और विस्फोट जनन होने के कारण दद्रु, किलास और खालित्य जैसे रोगों में लेप करते हैं। शीतल शोथों और कंठमाला को विलीन करने के लिये भी इसका लेप करते हैं। जिह्वा शोथ और दंत शूल में इसके काढ़े से कुल्ले कराते हैं। आहार पाचन और अरुचि को नष्ट करने के लिये इसे आहार में डालकर खिलाते हैं। प्लीहा शोथ को विलीन करने के वास्ते इसका चूर्ण सेवन कराते हैं। आमाशय से कफोत्सर्ग और कतिपय विषों के प्रभाव को नष्ट करने के लिये वमन द्रव्य की भाँति अधिक प्रमाण में (लगभग 1 तोला) गरम पानी में मिलाकर पिलाते हैं। अहितकर तृष्णा उत्पन्न करती है। निवारण बादाम का तैल और सिरका। प्रतिनिधि शलगम के बीज हैं। मात्रा 1 माशा से 3 माशे तक। (यू0 द्र0 विज्ञान)

सूचना–छाले उठाने के लिये राई का उपयोग नहीं करें, क्योंकि यह अति दाहकारक है, फुन्सियां या छाला हो जाता है। फिर छाला का क्षत भी शीघ्र नहीं सूखता। केवल चर्म प्रदाहक (Rubefacients) अर्थात् त्वचा लाल बनाकर शोथ शमनार्थ हो सकती है। बाह्य प्रयोग से संज्ञावहा नाड़ियां (Sensory nerves) में उग्रता उत्पन्न होने पर प्रतिफलित क्रिया द्वारा हृदय और श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तेजित होती है। इस हेतु से कभी–कभी मूर्च्छित मनुष्य को चेतना आ जाती है।

आभ्यन्तरिक प्रयोग से (मसाले राई खाने से) आमाशय और आंत्र के भीतर उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिससे आमाशय का रक्तस्राव बढ़ जाता है और मंथन क्रिया तेज हो जाती है। परिणाम में क्षुधा प्रदीप्त होती है। अन्त्र में इसकी उत्तेजना पहुंचने से मल आदि तर बनता है। इसके अतिरिक्त राई मूत्रजनन क्रिया भी दर्शाती है।

राजिका शोधन–राई का औषधि रूप से उपयोग करने के लिये ऊपर का छिल्का निकाल देना चाहिये। इस हेतु से राई को थोड़ा जल लगाकर कुछ समय तक फैला दें। फिर चक्की में से निकाल लेने पर छिलके पृथक् हो जाते हैं। उन्हें सूप से फटककर अलग कर लेवें। इसे चक्की में से पीस आटा बनाकर बोतल में भर लेवें।

उपयोग–राई का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है।

चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में भी राई का प्रयोग मिलता है। अग्निमांद्य, अपचन, विष प्रकोप, अफारा, उदरशूल, कफ प्रकोप, आन्त्रवृद्धि, कृमिरोग, श्वासरोग और हिक्का रोग में तथा मृत गर्भ को बाहर निकालने के लिये राई का उदर में सेवन कराया जाता है एवं बाह्योपचार रूप से कर्णपाक, कर्णशूल शोथ, संधिस्थान की पीड़ा, वातशूल, कक्षाग्रन्थि शोथ, बालकों की खांसी, व्रण, गांठ, अंजनी, पीनस, सिरदर्द, अर्श, उदर कृमि, श्वेतकुष्ठ, वातरक्त, गर्भाशय की विविध वेदना, बालकों का अजीर्ण तथा विविध अन्तर प्रदाह (फुफ्फुसावरण प्रदाह, यकृदावरणप्रदाह, श्वास नलिका प्रदाह, बीजाशय प्रदाह, मस्तिष्कावरण प्रदाह) आदि में राई का लेप किया जाता है। सन्निपात में देह शीतल होने पर और प्रसव कष्ट होने पर राई से मर्दन कराया जाता है। अपस्मार की मूर्च्छा में राई का नस्य दिया जाता है।

प्रत्युग्रतासाधक (Counter irritants) अर्थात् जिन उग्रता साधक औषधियों की क्रिया सम्बन्ध वाले स्थान पर प्रतिफलित करनी हो, ऐसे विविध रोगों पर राई के प्लास्टर या पुल्टिस लगाये जाते हैं। इसकी क्रिया सत्वर प्रकाशित होती है। ज्वर, विषूचिका आदि की अवसन्नावस्था में उत्तेजना देने से लिये कांख (Armpit) छाती, सांथल आदि स्थानों पर पुल्टिस का प्रयोग किया जाता है।

सूचना–राई की पुल्टिस बनाने के लिये शीतल जल या सिरका मिलाना चाहिये। कारण उष्ण जल में राई का प्रधान वीर्य द्रवीभूत नहीं होता।

मासिक धर्म का स्राव अल्प होना, उन्माद और रोमान्तिका आदि पिटिका प्रधान रोग, इन सबमें राई के जल से स्नान कराया जाता है। गर्भाशय का क्षत प्रधान अर्बुद रोग होने पर उत्तर वस्ति लगाई जाती है।

आंख में फूला पड़ने पर–राई का अंजन में उपयोग होता है। कर्ण पाक में राई और कर्पूर मिश्रित तैल कान में डाला जाता है।

(1) अपचन और उदरशूल में–राई का चूर्ण 1 से 2 माशे को थोड़ी शक्कर के साथ खिलाकर ऊपर से 5–10 तोला जल पिलावें।

(2) अफरा–राई 2 माशे को शक्कर के साथ खिलावें। ऊपर 6 से 8 रत्ती चूने को 5 तोले जल में मिलाकर पिला देवें। उदर पर राई का तैल लगावें।

(3) विष सेवन में–राई का चूर्ण 1 तोले को शीतल जल में पीसें। फिर उसको 40 से 60 तोले जल में मिला कर पिला देने से तत्काल वमन होकर विष निकल जाता है एवं अन्य वामक औषधियों के समान शिथिलता भी नहीं आती।

वक्तव्य– अफीम आदि से विषाक्त होने, विसूचिका की प्रथमावस्था, संन्यास रोग (मूर्च्छा) का उपक्रम तथा जुकाम में कफाधिक्य होने पर वमन कराई जाती है। इन सब पर राई सेवन कराना, यह अति निर्भय और अत्युत्तम उपाय है।

(4) मृत गर्भ को बाहर निकालने के लिए–राई 3 माशे और भुनी हींग 4 रत्ती को थोड़ी कांजी (या शराब) में मिलाकर पिला दवें।

(5) कफ ज्वर–जिह्वा पर सफेद मैल, क्षुधा नाश और तृषानाश सह मन्द ज्वर रहता हो तो राई का आटा 4–4 रत्ती सुबह–शाम शहद के साथ देते रहने से कफ प्रकोप से उत्पन्न ज्वर दूर हो जाता है।

(6) श्वास–राई आध माशे को घी, शहद में मिलाकर प्रातःसायं देते रहने से कफ प्रकोप सह श्वास रोग शमन हो जाता है। यदि अपचन होकर श्वास का दौरा हुआ हो तो 2–2 घण्टे पर 2–3 बार राई देने से वेग शमन हो जाता है।

(7) कफ प्रकोप–कास में कफ अधिक गाढ़ा हो जाने से निकालने में अति कष्ट होता हो तो राई 4 रत्ती, सेंधा नमक 2 रत्ती और मिश्री 2 माशे मिलाकर प्रातःसायं देते रहने पर कफ पतला होकर सरलता से बाहर निकलने लगता है।

(8) उदर में छोटे कृमि–उदर चूरब (सूत्र) कृमि अथवा धान्यांकुर के सदृश मुड़े हुये अन्त्रदा कृमि हो जाने पर राई का आटा 1–1 माशे, गौमूत्र 5 से 10 तोले के साथ प्रातःकाल को कुछ दिन तक लेते रहने से रहे हुये कृमि निकल जाते हैं और भावी उत्पत्ति बन्द हो जाती है।

(9) वात वृद्धि–राई के तैल में पकोड़े या पूरी आदि तलकर खिलावें। राई और सरसों के तैल को मिलाकर मालिश करें, फिर निवाये जल से स्नान करें।

सूचना–मस्तिष्कादि कोमल स्थान और नेत्र पर तैल नहीं लगाना चाहिये अन्यथा जलन होती है।

(10) विसूचिका–यदि विसूचिका उत्पन्न हुये अधिक समय न हुआ हो, रोग प्रथमावस्था में हो तो राई 1 माशे को शक्कर के साथ सेवन कराया जाता है।

(11) प्रतिश्याय–राई 4 से 6 रत्ती और शक्कर 1 माशे को मिलाकर थोड़े जल के साथ दे देने से प्रतिश्याय दूर हो जाता है।

(12) कर्ण मूल शोथ–सन्निपात होने पर कभी–कभी कान के मूल में सूजन आ जाती है। इस तरह कान में पूय होने पर भी सूजन आ जाती है। दोनों प्रकार की सूजनों पर राई के आटे को सरसों के तैल या एरण्ड तैल में मिलाकर लेप कर देने से रक्त बिखर जाता है।

(13) संधिशूल और अर्धांग वात–आमवात या सुजाक

के हेतु से या अन्य कारण से संधि पर सूजन आ जाती है और उसमें वेदना होती है, उस पर तथा नये अर्धांग वात से शून्य हुये अंग पर कपूर मिलाये हुये राई के तैल की मालिश करने से रक्ताभिसरण क्रिया बलवान होकर दोष को दूर कर देते हैं। यदि अति चलने के हेतु से या व्यायाम से सांधे-सांधे में थकावट आ गई हो और सारा शरीर टूटता हो तो भी तैल की मालिश से लाभ हो जाता है।

सूचना-संधि शोथ में त्वचा के नीचे जल (द्रव) संग्रहीत हुआ हो तो तैल की मालिश नहीं करें। उस पर स्वेदन सेक, लेप आदि उपचार किये जाते हैं।

(14) कक्षा-कांख में गांठ (कखौरी) होने पर वह अति दुःख देती है। न बिखरती है और न जल्दी पकती है। दिनों तक त्रास देती रहती है। उसे बिखेरने या पच्यमान अवस्था में सत्वर पकाने के लिये गुड़, गूगल और राई को मिला जल में बारीक पीसकर कपड़े की पट्टी पर लगा निवाया करके चिपका देवें। यदि पक गयी हो तो फाड़ने के लिये राई और लहसुन को पीस पुल्टिस बनावें। फिर कखौरी पर एरण्ड तैल या घी वाला हाथ लगाकर पुल्टिस बांध देने से जल्दी फूट जाती है।

(15) शोथ-हाथ पैर मुड़ जाने से या आगन्तुक कारण से सूजन आई हो तो एरण्ड पान पर राई का तैल लगा निवाया करके बांध देने से शोथ दूर हो जाती है। इस तरह राई और नमक को जल के साथ पीस करके भी लेप किया जाता है।

(16) शीतलता और कम्प-शीत ज्वर में अधिक ठण्डी लगती हो तथा कंपन (कम्प) हो रहा हो, जल्दी शीतलता दूर नहीं हुई हो तो राई को शहद में मिलाकर पैरों के तलवे पर लेप करें। फिर आधा घण्टे के बाद लेप को पौंछ लेवें। ठण्डी और कम्प दूर हो जायेंगे और शरीर में तेजी आ जायेगी।

(17) वातज वेदना-राई और थोड़ी शक्कर को पीस, कपड़े की पट्टी पर लेपकर शूल स्थान में चिपका देवें। लगभग आध घण्टे में जल न होने पर खोल लेवें। उस स्थान को जल से धोकर घी या तैल लगा लेवें। यदि वेदना कई दिनों से मन्द-मन्द बनी रहती हो, तो राई और सहिंजने की छाल को मट्ठे में पीसकर पतला लेप करें।

(18) व्रण-फोड़े में कीड़े पड़ गये हों, तो सब कीड़ों को निकाल कर उसे शुद्ध करने के लिये राई के चूर्ण को घी शहद में मिलाकर लेप कर देने से कृमि मर जाते हैं।

(19) गांठ-किसी भी स्थान की गांठ बढ़ती हो तो उस पर राई और काली मिर्च के चूर्ण को घी में मिलाकर लेप करने से वृद्धि रुक जाती है। रसौली और अर्बुदों की वृद्धि को रोकने में राई अच्छा काम देती है।

(20) अंजनी-नेत्र की पलक पर फुड़िया होने पर राई के चूर्ण को घी में मिलाकर लेप करने से तुरन्त लाभ होता है।

(21) पीनस-नाक के भीतर व्रण होकर दुर्गन्ध वाला पूय मिला श्लेष्मा निकलता रहता है, उसे पीनस कहते हैं। श्लेष्मा बहुधा अति पीला और अतिदुर्गन्ध वाला होता है। उस पर राई का आटा 1 तोला, कर्पूर 1½ माशे और घी 10 तोले को मिला मरहम बनाकर लगाया जाता है। उसे लगाने पर छींके आकर पूय प्रधान श्लेष्मा निकलकर क्षत शुद्ध हो जाता है। फिर कर्पूर और सफेद कत्थे को घी में मिलाकर बनाया हुआ मलहम लगाते रहने से सरलता से घाव भर जाता है।

(22) कर्णपाक-राई 1 तोला, लहसुन 1 तोला, कर्पूर 1½ माशे और तिल या सरसों का तैल 10 तोला लेवें। तैल को गर्म करें। उफान आने पर नीचे उतार लेवें। वाष्प कुछ कम हो जाने पर राई कर्पूर डालकर ढक्कन ढक देवें। शीतल होने पर छानकर बोतल में भर लेवें इस तैल में 2-4 बूंद कान में डालते रहने से पूय स्राव दूर होता है और क्षत भर जाता है।

(23) अर्श- अर्श रोग में कफ प्रधान मस्से हों अर्थात् खुजली चलती हो, देखने में मोटे हों और स्पर्श करने पर दुःख न होता हो, अच्छा मालूम होता हो, ऐसे मस्से पर राई का तैल लगाते रहने से मस्से मुरझा जाते हैं।

(24) श्वेत कुष्ठ-राई को आचार्यों ने कुष्ठघ्न कहा है। राई के आटे को 8 गुने पुराने गौघृत में मिलाकर लेप करते रहने से थोड़े ही दिनों में उस स्थान की रक्ताभिसरण क्रिया प्रबल होकर दाग दूर हो जाते हैं। इस तरह पामा, ब्यूची, दाद आदि पर भी राई का मलहम लगाते रहने पर लाभ पहुंच जाता है।

(25) कांटा दब जाना-त्वचा के भीतर कांटा, कांच या धातुकण घुस गया हो, तो सरलता से नहीं निकल सकता उस पर राई को घी शहद में मिलाकर लेप कर देने से विजातीय द्रव्य ऊपर आ जाता है और स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है।

(26) सन्निपात में भ्रम-गले पर राई का लेप करें। फिर त्वचा लाल होने पर लेप को हटाकर घी तैल लगा लेवें।

(27) हृदय की शिथिलता-हृदय में कम्प होता हो या वेदना होती है या व्याकुलता मालूम होती हो अथवा निर्बलता आ गयी हो, तो हाथ पैरों पर राई का मर्दन करने से रक्ताभिसरण क्रिया बलवान बनकर मानसिक उत्साह और

हृदय की गति में उत्तेजना आ जाती है।

(28) अफीम विषज मूर्च्छा–अफीम का जहर अधिक बढ़ जाने से रोगी मूर्च्छित हो गया हो या सर्प विष से मूर्च्छा आ गयी हो तो रोगी को जागरित करने या रखने के लिये कांख, छाती और सांथल आदि स्थानों पर राई का लेप लगाना चाहिये। यह लेप जागरित होने तक या अधिक से अधिक 1 घण्टे तक रखें। फिर खोल कर घी या तैल लगा लेवें।

(29) ज्वर और विसूचिका में अवसन्नावस्था–बुखार और कोलरा में रोगी कभी–कभी बिल्कुल ठण्डा और अचेत हो जाता है, उसे उत्तेजना देने के लिये कांख, छाती, सांथल आदि भागों पर ऊपर कहे अनुसार राई का लेप लगाया जाता है।

(30) अन्तर दाह और शूल–देह के भीतर अवयव या अन्त्र त्वचा से संयुक्त हो, उनके प्रदाह जैसे फुफ्फुसावरण प्रदाह, श्वास नलिका प्रदाह, हृदयावरण प्रदाह, आमाशय प्रदाह, यकृदावरण प्रदाह, बीजाशय प्रदाह, मस्तिष्कावरण, वात नाड़ियों में शूल आदि रोगों पर प्रत्युग्रता साधनार्थ राई के पान का प्रयोग किया जाता है। इस प्रयोग में पीड़ित स्थान के निकट में किसी सम्बन्ध वाले स्थान पर प्लास्टर लगाया जाता है। यह क्रिया वात नाड़ियां और रक्त वाहिनियों के द्वारा प्रतिफलित होकर लाभ पहुंचाती हैं।

आशुकारी तीव्र प्रदाह में जब प्रदाहजनित रस का शोषण कराना हो, तब यह प्रत्युग्रता साधक प्रयोग किया जाता है। प्रदाहशमन और रसशोषणार्थ फुफ्फुसावरण, हृदयावरण, मस्तिष्क, उदर्य्याकला (Peritonium) अर्थात् सारे उदर पर रहा हुआ आच्छादन, इन सब पर राई के प्लास्टर का उपयोग होता है। मूत्राशय में अश्मरी और पित्ताशय में से अश्मरी का नलिका में प्रवेश होने पर उत्पन्न शूल तथा वात नाड़ियों के शूल की वेदना निवारणार्थ प्रत्युग्रता साधक प्रयोग का व्यवहार होता है।

हिस्टीरिया में मस्तिष्कगत वातनाड़ी केन्द्र की उग्रता दमनार्थ प्रयोग होता है। गृध्रसी नाड़ी (Sciatica nerve) जो कूल्हे से नीचे पैरों की ओर जाती है, उसके शूल और उदर के पार्श्व भाग में नीचे की ओर रहे हुए कटि त्रिकोण प्रदेश (Lumber triangle) में शूल होने पर लेप लगाने से लाभ पहुंच जाता है।

विसूचिका में मांसपेशियों का आक्षेप (दृढ़ता) होने पर प्लास्टर लगाया जाता है। आमाशय प्रदाह के हेतु से होने वाली दुर्दमनीय वमन के निवारणार्थ प्लास्टर प्रयोग अति उपकारक सिद्ध हुआ है।

सूचना–(1) जब संग्रहीत रक्त को बिखेर कर वेदना निवारण कराना हो, तब प्रत्युग्रता साधक प्रयोग नहीं होता।

(2) फुफ्फुसावरण प्रदाह में लेप या प्लास्टर छाती पर लगाया जाता है।

(3) मस्तिष्कावरण प्रदाह में प्लास्टर गोस्तन प्रवर्द्धक (Mastoid Process), जो शंखास्थि के ऊपर उठे हुए भाग में शंकु आकार का भाग है, उसके नीचे लगाया जाता है। शीर्षोदर अर्थात् मस्तिष्क जल संग्रह (Hydrocephalus) होने पर भी द्रव शोषणार्थ उसी स्थान पर लगाया जाता है एवं हिस्टीरिया में किसी अंग का पक्षवध होने पर भी वहीं पर लेप करना चाहिये।

(4) प्रलाप, मूर्च्छा, सन्यास, पक्षवध और विविध प्रकार के प्रदाहिक ज्वर, जिनमें रक्त संग्रहीत होता है, उन सब पर पैरों के तल, कूल्हों (चूतंड़ों) के पश्चादंश या सांथल के भीतर के भाग में राई का लेप लगाना चाहिये एवं राई के जल में पैरों को 20–20 मिनट तक भिगोना भी हितकारक है।

(5) श्वास कृच्छ्रता प्रधान रोगों में छाती पर राई का प्लास्टर लगाना चाहिये।

(6) गर्भाशय की विविध वेदना अति तीव्र और कष्टप्रद होने पर नाभि के नीचे या कमर पर राई की पुल्टिस का प्रयोग बार–बार करते रहना चाहिये।

(31) फुफ्फुस की दृढ़ता–फुफ्फुस प्रदाह (निमोनियां) शमन हो जाने पर यदि फुफ्फुस की कठोरता (Consolidation) रह जाय तो उस भाग पर उग्रता पहुंचाने के लिये राई की पुल्टिस लगायी जाती है। फुफ्फुस की दृढ़ता के हेतु के फुफ्फुसावरण या हृदयावरण में रक्त संग्रह हुआ हो तो वह भी शोषित हो जाता है।

सूचना–(1) यदि प्रदाह युक्त स्थान से बिल्कुल समीप में राई का लेप लगाया जायेगा तो रक्त संग्रह का ह्रास नहीं होता, अपितु वृद्धि होती है। जिससे उपकार नहीं होता, बल्कि अपकार होता है।

(2) हृदय के लिये यह नियम लागू नहीं होता। हृदयावरण के प्रदाह में उससे थोड़ी दूर पर (छाती पर) ही प्रयोग किया जाता है।

(3) प्रदाह की प्रारम्भिकावस्था में या उग्रता ह्रास होने के पहले (तीव्र वेदना काल में) लेप या पुल्टिस नहीं लगाना चाहिये।

(4) सगर्भावस्था में स्तन आदि कोमल भाग पर प्लास्टर का प्रयोग निषिद्ध है।

(32) स्वर बन्ध–हिस्टीरिया में स्वर बन्ध हो गया हो अर्थात् बोलने की शक्ति नष्ट हो गई हो तो कण्ठ में स्वर यन्त्र पर उग्रता पहुंचाने के लिये राई का लेप करना चाहिये।

सूचना–यदि स्वर यन्त्र प्रदाह हो और उस स्थान पर दबाने से वेदना होती हो तो लेप नहीं लगाना चाहिये।

(33) अपस्मार की बेहोशी–राई के चूर्ण का नस्य देवें।

(34) दन्तशूल–राई को निवाये जल मिलाकर कुल्ले कराने से वेदना का दमन होता है।

(35) गंज–मस्तिष्क में किसी स्थान पर बाल उगना रुक जाय अथवा सूक्ष्म कृमि, जुयें उत्पन्न हो जायें, तो राई के हिम से (या फाण्ट से) सिर धोते रहने पर बाल उगने लगते हैं। दारुणक (सिर पर छोटी–छोटी फुन्सियां होना और खुजली चलना) और अरुंषिका (छोटी–छोटी पूयवाली फुन्सियां) दूर होते हैं तथा जुयें मर जाते हैं।

(36) मासिकधर्म के स्राव में प्रतिबन्ध–मासिकधर्म के समय कष्ट होता हो या स्राव कम होता हो तो जल को गरम (निवाया) कर उसमें राई का चूर्ण मिलाकर कमर डूबे उतने जल में रुग्णा को 1 घण्टे बैठाने पर योग्य परिमाण में स्राव बिना कष्ट से होता है। डॉक्टरी में इस स्थान को हिप बाथ और सिटज बाथ (Hip bath or Sitz bath) संज्ञा दी है।

(37) गर्भाशय के क्षत मय कर्क स्फोट–गर्भाशय में कर्क स्फोट (Cancer) होने पर जीवन अतिभय में आ जाता है। कर्क स्फोट की वृद्धि होती है और रक्त वाहिनियों द्वारा दूर–दूर के स्थानों पर भी अर्बुद बनाये जाते हैं। उनमें शिरा या केशिका के टूटने पर रक्त निकल जाता है, लसिका स्राव भी होता है। यह स्राव अति दुर्गन्धमय होता हैं इस स्राव की अधिक हानि से बचने के लिये सप्ताह में 2–3 बार राई के निवाये जल की उत्तर वस्ति द्वारा धोते रहना चाहिये। स्राव पतले जल जैसा होने पर चिकित्सा से अधिक लाभ होता है। स्राव गाढ़ा होने पर कुछ चुनचुनाता है।

सूचना–राई 2½ तोले को 10 तोले शीतल जल में भिगोवें। फिर मसल लुआब बनाकर 70 तोले निवाये जल में मिला देवें।

(1) राई का स्नान–राई के दस तोले से चालीस तोले चूर्ण को पहले थोड़े ठण्डे जल में भिगोवें। फिर मसल कर लुआब (Paste) बनाकर टब में भरे हुये सब जल में मिला लेवें। यह स्नान उत्तेजक है। रक्ताभिसरण क्रिया बढ़ती है।

स्थानिक स्नान अर्थात् कटितक स्नान, पैरों का स्नान अथवा केवल हाथों को डुबाने के लिये जल की उष्णता से 100 से 105 डिग्री फारनहाइट तक रखनी चाहिये। कटि स्नान में राई लगभग 10 तोले मिलानी चाहिये।

(2) राई की पुल्टिस–बड़े मनुष्य के लिये अलसी 3 भाग और राई 1 भाग तथा बालकों में लिये अलसी का चूर्ण 10 से 15 गुना लेना चाहिये। पुल्टिस सिरके या ठण्डे जल से बनानी चाहिये। उसे चमड़ी लाल होने तक 10 से 15 मिनट रखनी चाहिये।

(3) राई का लेप–राई को तीन गुने चावल या गेहूँ के आटे के साथ मिलावें और ठण्डे जल से लपसी जैसी बना लेवें। फिर 4–6 या 8 इंच चोकोर ब्राउन पेपर या मलमल पर लेपनी से पतला लेप करें। कागज के किनारे को मोड़ देवें। उस पर पतला मलमल का टुकड़ा चिपका कर दुखते स्थान पर या जहाँ लगाना हो वहां लगा देवें। 10, 20 या 30 मिनट में चमड़ी लाल होने पर लेप को हटा लेवें। 10 मिनट के बाद 5–5 मिनट पर देख लेवें। लेप हटाने पर तैल वाले हाथ से सब राई को पौंछ लेवें। फिर तैल या घी में लगा लगावें। राई लगी हो तो शीतल जल से धोकर फिर तैल लगावें।

(4) राई का पान–राई के लेप लगे हुये कागज बाजार में मिलते हैं, उनको राई के पान कहते हैं। तस्तरी में थोड़ा गरम जल लेकर उसमें पानी को फैलावें। राई के नीचे रखें, किन्तु पट्टी नहीं बाधें 20 मिनट से अधिक समय तक न रखें। अन्यथा छाला पड़ जायेगा।

–गां० औ० र० भा० 3 से साभार

राई काली (Brassica Nigra)

यह धान्यवर्ग और राजिकादि कुल (Cruciferae) का वर्षायु फसल उनालु नें होने वाला क्षुप है। यह राई की ही एक काली जाति होती है। इसका पौधा, पत्ते, फूल वगैरह सब राई के पौधे के ही समान होते हैं। यह काली राई लाल राई की अपेक्षा गुण–धर्म में बहुत उग्र होती है।

उत्पत्ति स्थान :

भारत के कई भागों में इसकी कृषि की जाती है।

नाम :

सं०–कृष्ण राजिका, कृष्णिका, कृमिका, ज्वलंती, क्षुधाभिजनन, क्षुज्जनिका। हि०–काली राई, बनारसी–राई, तारामीरा, तीरा। बं०–राई सरिश। गु०–काली राई। कोंकण–सन–सोनव। फा०–सरशाफ। अं०–खरदल। ता०–कुदुगु। ते०–अवालू। उर्दू–राई। अं०–Black Mastard (ब्लेक मस्टर्ड)। ले०–Brassia nigra (Linn.) Koch. (ब्रासिया निग्रा)।

रासायनिक संगठन :

काली राई के बीजों में सिनापिन नामक एक प्रकार का उपक्षार पाया जाता है, इसके अतिरिक्त इनमें एल्ब्यूमिन्स, मायमोजिन, सिनिग्रीन, गोंद और कुछ रंगने वाले द्रव्य भी पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अंग–बीज और तैल।

गुणधर्म और प्रभाव :

आयुर्वेदिक मत से काली राई के पत्ते गरम, तीक्ष्ण और सुस्वादु होते हैं। शरीर को शक्ति देते हैं। पित्त को बढ़ाते हैं। कृमियों को नष्ट करते हैं और गले की शिकायतों में लाभ पहुंचाते हैं। इसके बीज गरम, तीक्ष्ण और कड़वे होते हैं। ये वात को नष्ट करते हैं। बढ़ी हुई तिल्ली को दुरुस्त करते हैं। ज्वर को दूर करते हैं। शरीर में दाह उत्पन्न करते हैं। कफ से पैदा हुये अर्बुद में लाभ पहुंचाते हैं, कृमियों को नष्ट करते हैं, भूख बढ़ाते हैं। चर्म रोग और खुजली में लाभ पहुंचाते हैं। परोपजीवी कीटाणुओं को नष्ट करते हैं।

यूनानी मतानुसार :

यूनानी मत से राई के बीज सफेद, काले और लाल तीन तरह के होते हैं। ये गुण में मृदु विरेचक, भूख बढ़ाने वाले, अग्निवर्द्धक, शुद्ध डकार लाने वाले और खांसी को दूर करने वाले होते हैं। ये शरीर की सूजन को दूर करते हैं तथा तिल्ली की सूजन, विस्फोट की सूजन और संधियों की सूजन में लाभ पहुंचाते हैं। नाक, कान, आंख व दांतों के रोगों में ये उपयोगी होते हैं। बाहर रहने वाले परोपजीवी कीटाणुओं को ये नष्ट करते हैं और इनका धुआं मक्खी और मच्छरों को नष्ट करता है।

इसके बीजों का पुल्टिस एक बहुत उपयोगी और तेज चर्मदाहक एवं फफोला उत्पन्न करने वाली वस्तु है। ज्वर, सूजन वाले रोग, आक्षेप, स्नायुशूल, संधियों की सूजन, गठिया और भीतरी रक्त संचय में इसकी पुल्टिस एक बहुत उत्तम और लाजबाब वस्तु है। राई के आटे को पानी में मिलाकर देने से यह एक बहुत सुरक्षित वमन कारक वस्तु का काम करता हैं इसके बीज अगर बहुत थोड़ी मात्रा में लिये जायं तो वे एक पाचक चटनी का काम करते हैं, अगर ये सारे ही निगल जायं तो मृदु विवेचक द्रव्य का काम करते हैं। अजीर्ण रोग और आंतों की जड़ता सम्बन्धी दूसरी शिकायतों में भी इनको देने से लाभ होता है।

इन बीजों का विशुद्ध और ताजा तैल उत्तेजक और हल्का चर्मदाहक होता है। वह गले के हलके व्रणों पर लगाने से बहुत लाभ पहुंचाता है। अन्तरंग रक्त संचय और प्राचीन मांसपेशियों की अकड़न में यह एक बहुत लाभदायक वस्तु है। महर्षि चरक के मतानुसार राई के बीजों को दूसरी औषधियों के साथ सर्प विष को दूर करने के उपचार में लेते हैं, मगर केस और महस्कर के मतानुसार यह वस्तु सर्प विष के उपचार में निरुपयोगी है।

(1) पित्तशोथ—पित्त की सूजन पर राई की पुल्टिस बांधने से बहुत जल्दी लाभ होता है। परन्तु चमड़ी लाल हो जाने के पश्चात् इस पुल्टिस को उतार लेना चाहिये, नहीं तो वहाँ पर कष्टप्रद छाले हो जाते हैं।

(2) गठिया—राई का प्लास्टर करने से गठिया की वेदना फौरन मिट जाती है। इसके तैल में कपूर मिलाकर उसकी मालिश करने से गठिया में लाभ होता है।

(3) वमन—राई के आटे को पानी में घोलकर पिलाने से बहुत शीघ्र और निरुपद्रव वमन होता है और राई के प्लास्टर को पेट पर और कलेजे पर लगाने से भयंकर और हठीले वमन भी बन्द हो जाते हैं।

(3) मन्दाग्नि—राई की फंकी देने से कब्जियत की वजह से पैदा हुई मंदाग्नि मिट जाती है।

(5) आलस्य—इसके ताजे और शुद्ध तैल की मालिश करने से शरीर का आलस्य मिटता है।

(6) गले की सूजन—गले की हल्की सूजन पर इसके तैल की मालिश करने से लाभ होता है।

(7) रुधिर का जमाव—शरीर के भीतर अगर कहीं रुधिर का जमाव हो जाय तो वहाँ इसके तैल की मालिश करके सेंक कर देने से वह जमाव बिखर जाता है।

(8) पट्ठों की सूजन—राई के तैल की मालिश करने से पट्ठों की पुरानी सूजन उतर जाती है।

(9) जुकाम—राई के तैल का पैरों और पैरों के तलवों पर तथा नाक के ऊपर मालिश करने से मस्तक की सर्दी और जुकाम एक रात में मिट जाते हैं। नाक पर इस तैल की मालिश करने से नाक का बहना तुरन्त बन्द हो जाता है।

(10) बच्चों की खांसी—बच्चों की छाती पर राई के तैल की मालिश करने से उनकी खांसी मिट जाती है।

(11) बिच्छू का विष—कपास के पत्ते और राई को पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

(12) मृत गर्भ—राई और हींग के चूर्ण की फंक्की देने से मरा हुआ बालक गर्भ से बाहर निकल जाता है।

(13) वातशूल—राई और सहजने की छाल को गाय के मट्ठे के साथ पीसकर लेप करने से वातशूल मिटता है।

(14) सर्प विष—सांप के काटे हुये को बड़ी मात्रा में राई खिलाने से वमन होकर विष हल्का पड़ जाता है।

(15) आधा शीशी—राई और कबूतर की बीट को पीसकर लेप करने से आधाशीशी मिटती है।

(16) दाद—राई को सिरके के साथ पीसकर लेप करने से दाद मिटता है।

(17) कांख बलाई—राई को गरम जल के साथ पीस

कर लेप करने से बगल के भीतर होने वाली विद्रधि मिट जाती है।

(18) बदगांठ–राई का लेप करने से बद गांठ बिखर जाती है।

(19) सिर की गंज–आधी कच्ची और आधी सेकी हुई राई को पीसकर कड़वे तैल में मिलाकर लगाने से सिर की गंज मिटती है। –ब0 चं0 से साभार

सं0–रागी, राजिका, हि0–मण्डुवा, कृपया, मण्डुवा नाम से अवलोकन करावें। रांगन–सं0–बन्धुका। कृपया देखिये–बन्धुका।

राजगिरा (Amaranthus Paniculatus)

यह अपामार्गादि कुल (Amaranthaceae) की एक वर्ष जीवी वनस्पति होती है, इसका पौधा खूबसूरत और करीब 5 फीट ऊँचा होता है। इसके पत्ते मांसल, अण्डाकार और बरछी के आकार के होते हैं, इनकी लम्बाई 2 से लगाकर 6 इंच तक ेर चौड़ाई 1 से 3 इंच तक होती है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं।

इसकी फली लम्बी और गोलाकार रहती है। इसके बीज छोटे–छोटे गोल–गोल राई से कुछ बड़े होते हैं। यह व्रतियों के उपवास के दिनों में फलाहार के काम में आती है, इसकी 2 किस्में हैं एक हरी और दूसरी लाल।

उत्पत्ति स्थान :

इसकी सारे भारत में शाक की तौर से कृषि की जाती है। बगीचों में बारहों मास प्राप्त हो जाती है। यह खास करके हिमालय की 9000 फीट से ऊपर की जमीन में खूब पैदा होती है और पैदा की जा सकती है।

रासायनिक संगठन :

इसके बीजों में आवश्यक पोषक तत्व अच्छी मात्रा में जो आदर्श भोजन में होने चाहिये, वो मौजूद हैं।

प्रयोज्यांग–बीज, पत्ते और तने।

नाम :

सं0–राजाद्रि, राजगिरी, राजशाकिनी। हि0–राजगिरा, चौलाई, चुआमारसा, गनहर। बं0–चुको, नतया, राजशाक, बथु। गु0–राजगरो, चुको। दक्षिण, म0–राजगिरा। बम्बई–करोज्भाजी। काश्मीर–वस्तनाफुरीज। फा0–बुस्तना फरोज। परशियन–ताजी खुरस। बुस्तान–अफरोज। कन्नड़–राजिगरी। हिमालय–केदारी चुआ। ता0–पुंकी की राई। ले0–Amaranthus Paniculatus linn (अमेरेन्थस पेनिक्युलेटस), Amaranthus caudatus (असेरेन्थस कोडेटस)।

गुणधर्म और प्रभाव :

आयुर्वेद के मतानुसार इसके पत्ते और बीज कफ कारक, भारी, सारक, निद्रा लाने वाले, शीतल, कब्जियत करने वाले रुचिकारक और पित्त नाशक होते हैं।

यह वनस्पति रक्त को शुद्ध करने वाली होती है। बवासीर में इसके सेवन से लाभ होता है। पथरी में इसको मूत्रल वस्तु की तरह देते हैं। गण्डमाला के फोड़े में इसके बीजों की रोटी और पत्तों का शाक करके देते हैं। पेशाब की जलन में भी इसके पत्तों स्वरस देने से लाभ होता है।

(ब0 चं0)

राजबला (Abutilon Tomentosum)

यह कार्पासादि कुल (Malvaceae) की अतिबला की ही एक उपजाति होती है। इसका सारा पौधा रेशम के समान मुलायम रुओं से भरा रहता है। इसके फूल नारंगी रंग के रहते हैं। इसका सारा पौधा अतिबला (कंघी) के समान होता है, मगर उससे कुछ बड़ा होता है।

उत्पत्ति स्थान :

बाड़ों और बगीचों की पड़त जमीन में पाया जाता है।

नाम :

सं0–राजबला। हि0–राजबला। म0–चकभेंड़ा। गु0–खपाट। ले0–Abutilon tomentosum (एब्यूटिलन टोमेंटोसम)।

गुधधर्म व प्रभाव :

इस वनस्पति में सब गुण धर्म अतिबला के गुण धर्म के समान ही होते हैं, इसके बीज स्नेहन, मूत्रल, पौष्टिक और कुछ कामोद्दीपक होते हैं।

राजमाह (चांवला) (Vigna Catjung)

यह शाक वर्ग और शिम्बी कुल (Leguninosae) की बेल होती है, जो फसल खरीफ या मौसम वर्षा में कृषि की जाती है। यह एक प्रकार की दाल की जाति का अनाज है। इसकी बेल उड़द की बेल की तरह होती है। इसके तीन पत्ते एक सींक में होते हैं। इसकी फलियां 6 इंच से लेकर 1 फुट तक लम्बी लगती है। इन फलियों की तरकारी सारे हिन्दुस्तान में बनाई जाती है।

इसके बीजों का रंग सफेद और मुंह पर काला

होता है। यह सफेद, लाल, काले भेद से तीन प्रकार का होता है।

वक्तव्य–दाहोद की ओर मोटा चंवला वालोल के समान बीज वाले होते हैं। गुजरात में छोटे चंवले होते हैं।

उत्पत्ति स्थन :

इसकी सारे भारत के उष्ण भागों में कृषि की जाती है।

नाम :

सं०–राजमाष, अलसान्द्र, चवला, महामाष। हि०–चंबला, लोबिया, चोला, बोरा, रवां, लोभिया बड़ा। बं०–बर्बटी। खानदेश–सोंटा। गु०–चोला, चोल। म०–चबल्या। तं०–रवन, रैस। ता०–कारामुनी, पायरा। ते०–बोबर्लु। म०–अलसंदुर। राज०–चंवला–अरबी–फिरिका। फा०–कजराजू। को०–अलसंदे। क०–तदगणि। अं०–Cowpea (कॉउपी)। चीनी–Beans (बीन्स)। ले०–Vignacatjung Walp. (विग्नाकेटजंग)।

रासायनिक संगठन :

मांसवर्द्धक द्रव्य 24%, पिष्ट 56%, तेल 1%, राख में 1% भास्वराम्ल होता है।

उपयुक्त अंग–फलियां और बीज।

गुणधर्म और प्रयोग :

आयुर्वेदिक मत से चंवला भारी, स्वादिष्ट, कसैला, तृप्तिकारक, सारक, रूखा, वातकारक, रुचिकारक, स्तनों में दूध बढ़ाने वाला और बलकारक है। (भा०प्र०)

संक्षेप में–रस मधुर, कषाय। वीर्य–मधुर। विपाक–मधुर। दोषघ्नता–कफ पित्त है।

चंबला (लोबिया) सारक, रुचिकारक, कफकारी, शुक्रजनक, अम्लपित्त नाशक, स्वादिष्ट, वातकारक, रूक्ष, कसैला विशद और भारी है। (च० सु० सं०)

लोबिया–(चंबला) की दाल रूखी, भारी, स्वादिष्ट, कसैली, मलरोधक, वातकारी, स्तनों में दूध प्रगट करने वाली और रुचि को उत्पन्न करने वाली है।

चरक–चंबले को अम्लपित्त का नाशक कहते हैं। कारण–चंबला, मधुर, रूक्ष, कषाय है और अम्लपित्त, कफ वात जन्य होने से तथा चंबला विपाक में मधुर होने से ये अम्लपित्तनुत् है।

यूनानी मतानुसार :

प्रकृति–मल भूत द्रव्ययुक्त गरम और खुश्क। गुण–कर्म–यह श्लेष्म निःसारक, मूत्रार्त्तवजनन, वाजीकरण, स्तन्य जनन, लेखन और श्वयथु विलयन तथा विशेषकर शुक्रल है।

उपयोग :

लोबिया की कोमल और नरम फलियां अकेली या मांस के साथ पकाकर खाई जाती हैं और पक्की फलियों के बीजों की दाल पकाकर खाते हैं। आर्तव जनन के लिए इसका क्वाथ पिलाते हैं। चेहरे का रंग निखारने और सूजन उतारने के लिये इसका लेप लगाते हैं। अहितकर–आनाह कारक एवं चिरपाकी। निवारण दालचीनी, अदरक और कालीमिर्च।

मात्रा–क्वाथ रूप में 1 तोला। (यू० द्र० वि०)

राड़ी (Lathyrus Aphaca)

यह शिम्बी कुल (Yeguminosae) का एक धान्य है। जिसको आगरा व अवध के पास अंकरी नाम से पुकारा जाता है। यह गेहूँ और ज्यादातर मसूर के खेतों में अपने आप उगता है। इसकी फलियां लम्बी–लम्बी होती हैं, उनमें से जो गल्ला निकलता है, उसकी शक्ल कुछ कालास व मसूर के दाने की मानिन्द ललाई लिये रंग की होती हे, लेकिन वह गोल होता है और मसूर के दाने से किसी कदर छोटा। अक्सर मसूर की दाल गल जाती है और यह नहीं गलती। इसलिये किसान लोग इसको अलग कर लेते हैं। शिंगरफ की इतनी बड़ी मात्रा इसी गल्ला "रवाड़ी या राड़ी" के साथ एक ही मात्रा में एक तोला तक आसानी से खाई जा सकती है। शिंगरफ के अवगुण नष्ट करने के वास्ते इसका वजन शिंगरफ के बराबर होना चाहिये।

उत्पत्ति स्थान :

यह उत्तरी पश्चिमी भारत में, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, मध्य भारत और पश्चिमी हिमालय पर्वतों पर 7000 फीट की ऊँचाई पर होती है।

गुणधर्म व प्रयोग :

सप्ताह उल खजायन जिसमें अक्सीर और रसायनों का वर्णन है, जो दफ्तर अलहकीम मोची दरवाजा लाहौर (पाकिस्तान) से प्रकाशित है। उसके पृष्ठ 93 से 95 वें तक बिना शुद्ध किये शिंगरफ (हिंगुल) सेवन का प्रयोग है और वह भी रत्ती दो रत्ती की मात्राओं में नहीं होकर 1 ही मात्रा में 1 तोला देना लिखा है और वह उसकी दर्पनाशक औषधि के साथ दिया गया है। जिसकी परीक्षा कई हकीमों ने करके अजीब असर पाया है, वह योग वैद्य बन्धुओं की

सेवा में प्रस्तुत है।

अशुद्ध शिंगरफ रूमी योग—शिंगरफ रूमी, राड़ी या रवाड़ी गल्ला बराबर लेकर अलग—अलग पीसकर वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर मिला लेवें और फिर इसको एक प्रहर अच्छा खरल करके शीशी में रख लेवें।

गुण—प्रमेह, वीर्य का पतलापन, स्वप्न दोष, नामर्दी, रुकावट की कमी, खून की कमी आदि में यह दवा 6 माशा लेकर एक सेर गाय का दूध पीवें। इस दिन और इसके सेवन के दो दिन बाद तक भोजन में दूध चावल की खीर जिसमें घी डाला गया हो सेवन करें। एक हफ्ते के बाद 6 माशा दवा और ऊपर माफिक सेवन करें। भोजन भी तीन दिन तक वही चावल दुग्ध खीर घृत का करना चाहिये। किसी—किसी को इसके सेवन से कब्जी या बेहोशी होती है। अगर ऐसा हो तो हफ्ते भर का बीच में विश्राम देकर दवा को फिर सेवन करावें। क्योंकि गुण तब ही होता है, जब दवा का सम्यक् पाचन हो। इसके एक वक्त खाने से एक साल तक अच्छी ताकत रहती है। पुस्तक में उदाहरण है कि एक व्यक्ति प्रमेह, स्वप्न दोष, नपुंसकता से कई वर्षों से रुग्ण था और चिकित्साओं से नाउम्मीद हो चुका था। उसको सात माशा शिंगरफ रूमी और 7 माशा राड़ी गल्ला मिलाकर दूध के साथ खिलाया गया, उसको कुछ दस्तें लगीं। तीसरे दिन दोनों दवाइयाँ 10—10 माशा खिलाई गई सिर्फ कुछ उबकाइयाँ आई। एक हफ्ता के बाद दोनों दवाइयां 1—1 तोला दी गई। इससे न तो दस्तें हुईं नहीं कय व बेहोशी। दवा खाने के दो दिन बाद से ही वह व्यक्ति ऐसा ताकतबर और तन्दुरुस्त हो गया कि जवानी में भी वह ऐसा नहीं था। (रा0 वै0 स0 पत्रिका से)

रान चिमनी (Andrographis Echioides)

यह वासकादि कुल (Acanthaceae) की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा आधा फीट से 1½ फीट तक ऊँचा होता है।

उत्पत्ति स्थान :

यह वनस्पति भारतवर्ष के खुश्क प्रदेशों में पैदा होती है।

नाम :

हि0, म0—रान चिमनी। गु0—कालू किरायतू। मल0—पिदुम्बा, द0—रान जिमनी। ले0—Andrographis echioides Nees (एण्ड्रोग्राफिस इचि आइडस)।

गुणधर्म और प्रभाव :

रीड के मतानुसार यह वनस्पति बुखार के अन्दर उपयोगी समझी जाती है। (ब0 चं0)

रानीफूल (Polygonaum Plebejum)

यह चुक्रादि कुल (Polygonaceae) की एक फैली हुई शाखाओं वाली वनस्पति होती है। इसके पत्ते 4 से लेकर 17 मिलीमीटर तक लम्बे होते हैं। इसके फूल गुलाबी रंग के होते हैं। इसके फल कड़े छिलके वाला, चिकना और चमकदार होता है।

उत्पत्ति स्थान :

यह वनस्पति हिमालय में काश्मीर से लेकर भूटान तक 7 हजार फीट तक की ऊँचाई पर होती है।

गुणधर्म और प्रभाव :

क्वार्टर के मतानुसार लखीमपुर में इसके पौधे को सुखाकर उसका चूर्ण करके निमोनिया के रोगियों को औषधि के रूप में खिलाने के काम में लेते हैं।

केम्पबेल के मतानुसार संथाल लोग इसकी जड़ों को आंतों की तकलीफ में सेवन करने के काम में लेते हैं।

रोमचना (Vitis Trifolia)

यह द्राक्षाकुल (Vitaceae) की एक बड़ी बेल होती है। वर्षा ऋतु में इसकी हरी भरी बेल जंगलों, झाड़ियों तथा थूहर के वृक्षों पर खूब फैली हुई देखने में आती है। डाक्टरों ने इसकी गणना अंगूर कुल में की है। इसका डंठल पतला, अनेक शाखाओं प्रशाखाओं से युक्त और त्रिकोणाकार होता है। पत्ते की डंडी की दूसरी ओर अनियमित तागे के समान बाल होते हैं, जो झाड़ी आदि से लिपट जाया करते हैं। प्रत्येक सींक पर तीन—तीन पत्ते लगते हैं, जिनमें से बीच का पत्ता बड़ा होता है। पत्ते डंडी की ओर से गोलाकार होकर बीच के भाग में अणीदार होते हैं, फूल किंचित हरापन लिये सफेद रंग के झुमकों में आते हैं और फल भी झुमकों में ही मटर के समान गोल होते हैं और कच्चे रहने की दशा में हरे, और पकने पर नीले रंग के तीन—चार बीज वाले और रस से भरे हुये होते हैं। बीज त्रिकोणाकार और

नुकीले होते हैं। इस लता के नीचे लगभग 9 इंच का एक कन्द बैठता है। इस कन्द से तन्तु निकलकर जमीन के अन्दर फैलता है और एक दो हाथ की दूरी पर वैसे ही एक कन्द बैठता है। इस प्रकार जगह–जगह आठ–दस कन्द होते हैं। इस बेल के पत्ते, डंडी सब खट्टे होते हैं।

चित्र अवलोकन कीजिये।

उत्पत्ति स्थान :

यह भारत के सभी प्रदेशों में और विशेषकर उष्ण प्रदेशों में हिमालय पहाड़ तक तथा सिलोन के जंगलों में तथा झाड़ियों के वृक्षों आदि पर अधिकता से पाई जाती है।

रामचना (Vitis Trifolia Linn.)

नाम :

सं0– अत्यम्लपर्णी, तीक्ष्ण, कंडूरा, वल्लिसूरणा, करवड़ वल्ली, वनस्था, अरण्य वासिनी। हि0–रामचना, खटुआ, अम्लबेल, अमलबेल, अमर्ती, इमर्ती, गिदाद द्राक, कस्सर, बं0–कड़वड़ वेनि, बंदल, बुन्दल, अमल लता, सोनकेसुर। राज0–रामचिणा। महाराष्ट्र–आवेट बेल, कड़मड़ बल्लि, ओधी, अंबट बेल। ते0–मंडलमारी, कुरूदिन्ने, काडेय तिग्गे, कनपटिगे, मंडल मारीतिगे, मेकमेत्त निचेट्टु, खाट खटूब बेल्य। क0–हिग्गोली, जारिललरा। ता0–तुकबुलिरिक। आसामिया–मैमटी। पं0–कारिक, आम्ल बेल, गिदर द्राक, द्रिकी, वल्लर। गु0–खाटखटंबो सिंहली–वलरतदियलबु। ले0–Vitis Trifolia, Syn. Vitis earnosa Vitis Pentaphylla (विटिस ट्रिफोलिया)।

प्रयोज्यांग–कन्द, पत्र और फल।

गुणधर्म और प्रयोग :

अत्यम्लपर्णी (रामचना) तीक्ष्ण, अम्ल, अग्नि को दीपन करने वाली, रुचिकारक, प्लीहा, शूल वात कारक, गुल्म और कफनाशक है। –रा0 नि0

(1) इसकी जड़ और बीज औषध प्रयोग के काम में आते हैं। इसकी जड़ को कामराज कहते हैं, जिसका लोशन बनाया जाता है। हल की रगड़ से बैलों के कन्धों पर जो घाव होते हैं, उन पर पत्तों की पुल्टिस लगाई जाती है। इसकी जड़ को कालीमिर्च के साथ पीसकर फोड़े पर लगाने से लाभ होता है।

(2) बिच्छू के काटे हुये स्थान पर इसका कन्द घिसकर लगाने से फायदा होता है।

(3) सूजन और फोड़े पर कन्द की पुल्टिस बांधनी चाहिये।

(4) फुन्सियों पर पत्तों को कालीमिर्च के साथ पीसकर लगाने से फायदा होता है।

(5) अतिसार में फलों की तरकारी खाना लाभकारी है।

(6) हल की रगड़ से बैलों की गर्दन में घाव उत्पन्न होने पर पत्तों की पुल्टिस बांधनी चाहिये।

(7) इसके पत्तों का शाक घृत में तलकर थोड़ा–थोड़ा खाने से सुजाक मिटता है। इसको लगाने से खाज आती है। मूल को खाने से जीभ में खाज आती है। यह एक प्रकार का बल्ली युक्त–बेलदार सूरण जिमीकन्द होता है। इसका अधिक प्रयोग जंगली लोगों में होता है।

अनुभूत चिकित्सा सागर में जो वर्णन किया है, वह सब अम्लपर्णी का है। –रूप निघण्टु से साभार